सरल-साहित्य-सङ्कलनम्

पूर्वार्धम्

लेखक तथा सम्पादक

प्रो० धर्मचन्द सन्त

बी. ए. (आनर्ज), एम. ए. (सं० हि० राजनीति)

संस्कृत वा हिन्दी विभाग,

पंजाब यूनिवर्सिटी कैम्प कालेज, नई दिल्ली ।

प्रकाशक

ओरिएण्टल बुक डिपो

१७०४, नई सड़क, दिल्ली ।

द्वितीय संस्करण } मूल्य १।।)

प्रकाशक—
ओरियण्टियल बुकडिपो,
दिल्ली ।

मुद्रक—
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली ।

कुछ अपने शब्द

किसी देश की स्थिति को मापने का मापदंड उस देश की संस्कृति होती है और संस्कृति का गहरा सम्बन्ध उस देश की भाषा से होता है। भारत की संस्कृति का संसार में इतना उन्नत स्थान और सम्मान क्यों है ? इसका एकमात्र कारण इसकी भाषा संस्कृत है। हमारे ऋषि-महर्षियों, उपदेशकों और तत्त्व-वेत्ताओं ने इस देश को संस्कृत भाषा के द्वारा उन-उन तत्त्व-रत्नों की अमूल्य निधि दी है जिनके कारण इस अधोगति के समय में भी इसका मुख उज्ज्वल है और इसका स्थान संसार की अग्रसर जातियों में किसी से पीछे नहीं है।

संस्कृत को मृत भाषा कहा जाता है, क्योंकि वर्तमान काल में यह कहीं भी व्यवहृत नहीं होती। ऐसा होने पर भी असंख्य तथाकथित प्रचलित भाषायें इससे ही जीवन लेकर पनप रही हैं। भारत की तो समस्त भाषाओं का इसी के आधार पर निर्माण हुआ है क्योंकि इसके शब्द-भंडार में किसी भी विषय के दुरूह से दुरूह भावों को व्यक्त करने की क्षमता है। यही कारण है कि भारत के शासन-विधान में राष्ट्र-भाषा हिन्दी का शब्द-भण्डार संस्कृत पर आधारित ही स्वीकृत हुआ है।

इधर बहुत देर से संस्कृत की ओर हम लोगों की उपेक्षा-सी रही है। कारण यह कि यहाँ की शिक्षा-प्रणाली में इसका स्थान इतना उन्नत नहीं रहा जितना होना चाहिए। यह हमारी भूल है। यहाँ की संस्कृति को जीवित रखने और राष्ट्र-भाषा हिन्दी को उन्नत और समृद्ध करने के लिए संस्कृत को

जीवित रखना प्रत्येक भारतीय का ध्येय होना चाहिए। वास्तव में देखा जाय तो हिन्दी ही क्या, इस देश की सब भाषाओं का शब्द-भंडार संस्कृत पर ही आश्रित है। हिन्दी के तो शब्द-कोष में कम से कम सत्तर प्रतिशत शब्द संस्कृत के, कुछ तत्सम और कुछ तद्भव, मिलेंगे। इस दृष्टिकोण से सभी प्रान्तों में संस्कृत का स्थान पाठ्य-प्रणालो में अत्युच्च होना चाहिए।

कुछ इन उपरिलिखित कारणों से और कुछ अन्य कारणों से संस्कृत की पाठन-प्रणाली में आवश्यकता और अवसर के अनुसार वैसे संशोधन और परिष्कार नहीं किये गये जैसे दूसरी भाषित भाषाओं में किये गये हैं। इसका साहित्य सुकुमार छात्रों की रुचि और योग्यता के अनुसार बना कर उनके सामने नहीं रखा गया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि संस्कृत के पाठन में अध्यापकों की और पढ़ने में छात्रों की रुचि नहीं रहती रही। आशा है अब, जब कि इसका स्थान पाठ्य-प्रणाली में उन्नत होगा, इस न्यूनता को आवश्यकता और समय का प्रभाव पूरा करेगा।

प्रस्तुत-संग्रह 'सरल-साहित्य-अङ्कलनम्'की सामग्री पंचतन्त्र, हितोपदेश, कथासरित्सागर, शुक-सप्तति, पुरुप-परीक्षा, भोज-प्रबन्ध, द्वात्रिंशत्-पुत्तलिका, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता, भास, चाणक्यनीति, बुद्ध-चरित, कामन्दकीय नीति-सार, दश-कुमारचरित—आदि से ली गई है। इस प्रकार यह छात्रोपयोगी संस्कृत-साहित्य का प्रतिनिधि-संग्रह है। इसमें रोचक-रोचक आख्यायिकायें और छात्रों के आचरण को उन्नत करने के सदुपदेश भी दिये हैं।

इस संग्रह के दो खंड हैं—पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। दोनों

खंडों में गद्य-भाग भी है और पद्य-भाग भी। पूर्वार्ध में कुछ सरल सामग्री है, उत्तरार्ध में उससे कुछ उच्च स्तर की। इसी कारण पूर्वार्ध के पाठ कुछ छोटे और सरलतर हैं। पाठों के कलेवर भाषाविकास के सिद्धान्तों के अनुसार रचे गये हैं—अर्थात् सरल के पश्चात् सरलतर, सरलतर के पश्चात् कुछ कठिन और फिर कठिनतर विषय क्रमशः रखे गये हैं। इसी विचार से पहले तीन पाठों में सन्धियुक्त और समस्त शब्द नहीं दिये गये, क्योंकि सन्धि और समास कुछ जटिल विषय हैं, अतः उनके साथ ही पाठों को आरम्भ करना भाषा-विज्ञान के प्रतिकूल है। तीन पाठों के बाद सन्धियों और समासों का प्रयोग क्रमशः किया गया है और जहाँ कहीं भी किसी नई सन्धि या समास का प्रयोग हुआ है उसका नियम भी नीचे टिप्पणी में दे दिया है। इस विधि के अनुसार पाठक महोदय सन्धि और समासों पर विशेष ध्यान दे सकेंगे। सन्धि और समास संस्कृत भाषा के अत्युपयोगी और साथ ही कुछ कठिन भी अंग हैं। ये ही संस्कृतज्ञान में बड़ी बाधाओं में से हैं। इन बाधाओं को दूर करना इस प्रणाली का उद्देश्य है।

पुस्तक के कलेवर के बाद 'संस्कृत भाषा के मुख्य और विशेष अंग' इस शीर्षक का एक छोटा सा अध्याय दिया है। इसमें भी सन्धि और समासों पर विशेष प्रकाश डाला गया है। अन्त में पुस्तकान्तर्गत पाठों से सम्बद्ध कुछ प्रश्न और कुछ क्लिष्ट शब्दों के अर्थ दिये हैं।

प्रत्येक पाठ के अन्त में एक अभ्यास है। इन अभ्यासों में हमने दो बातें नई दी हैं—हिन्दी वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद और संस्कृत प्रश्नों के संस्कृत में उत्तर। अनुवाद में केवल वे ही

शब्द प्रयुक्त हैं, जो उस पाठ में विद्यमान हैं, और संस्कृत-प्रश्नों के उत्तर भी प्रश्न-वाक्यों में ही एक-दो शब्दों के परिवर्तन या प्रयोग से दिये जा सकते हैं। इस विधि से छात्रों में जो संस्कृत-संभाषण के प्रति उदासीनता और संकोच रहता है वह किसी अंश में दूर हो सकेगा। अन्त में अध्यापक-महोदय-वर्ग से विनय है कि वे प्रत्येक पाठ को अभ्यासों-सहित पढ़ाने का यत्न करें; तभी छात्रों में वे उनकी रुचि और भाषाज्ञान में प्रवृत्ति कराने के समर्थ हो सकेंगे।

—सन्त धर्मचन्द्र

विषयानुक्रमणिका

पूर्वार्धम्

गद्य-खण्डः

पद्य-खण्डः

पूर्वार्धम्

गद्य-खण्डः

कृतघ्नः सर्पः—१

एकः ग्रामीणः हेमन्ते ऋतौ कञ्चित् ग्रामं गच्छन् मार्गे भुवि पतितं निश्चेतनम् एकं सर्पम् अपश्यत्। सः खलु शैत्यस्य अधिकतया म्रियमाणः आसीत्। ग्रामीणस्य हृदये करुणा समुत्पन्ना। सः सर्पः तं वस्त्रस्य मध्ये कृत्वा तं गृहम् आनयत्। अग्नेः तापेन अन्यैः विविधैः उपचारैः च तं स्वस्थम् अकरोत्।

एवं सः सर्पः तस्य ग्रामीणस्य गृहे स्वजन इव चिरं सुखेन न्यवसत्। दुग्धेन अन्यैः च पौष्टिकैः पदार्थैः पोष्य-

माणः सः अतिबलवान् सञ्जातः। तस्य विषम् अपि अवर्धत।

एकदा सः सर्पः तस्य ग्रामीणस्य शिशुना क्रीडन् आस्त। क्रीडता च तेन दष्टः सः शिशुः अनतिचिरात् पञ्चत्वं गतः।

सर्पेण दष्टं स्वसुतं मृतम् अवलोक्य ग्रामीणस्य कोपः जातः। कोपेन आविष्टः सः एकं लगुडम् आदाय तेन सर्पं प्रहर्तुम् उद्यतः।

अभ्यासः

(क) १—सः सर्पः ग्रामीणस्य गृहे न्यवसत्।
२—तेन तस्य विषम् अपि अवर्धत।
३—ग्रामीणः भुवि पतितम् एकं सर्पम् अपश्यत्।
इन वाक्यों में कर्ता, कर्म और क्रिया-पदों को चुनो।

(ख) गतः, आदाय, अकरोत्—
इन पदों का वाक्यों में प्रयोग करो।

(ग) १—ग्रामीण कहाँ जा रहा था ?
२—उसने क्या देखा ?
३—साँप को उसने कहाँ देखा ?
४—साँप ने क्या किया ?
५—ग्रामीण को क्रोध क्यों हुआ ?

कृतघ्नः सर्पः—२

तं ग्रामीणं लगुडेन सर्पं प्रहरन्तम् अवलोक्य केनचित् गच्छता अध्वगेन पृष्टः सः—किम् एनं वराकं सर्पं लगुडेन प्रहरसि ? एषः निरपराधः प्रतीयते ।

सः प्रत्यवदत्—महाभाग, न अयं निरपराधः । अयम् अतिकृतघ्नः दुराचारः च । मया अस्मै शैत्येन म्रियमाणाय जीवनं दत्तम् । अयं पालितः पुत्रवत् पोषितः च । तस्य प्रतिकारे अनेन दुष्टेन मे निरपराधः शिशुः दष्ट्वा पञ्चत्वं नीतः । एतस्य वधः एव समुचितः दण्डः ।

पान्थः प्रत्यवदत्—भोः ! न अस्य दोषः । त्वम् एव अपराधी । ग्रामीणः अवदत्—कथम् अहम् अपराधी इति ?

पान्थः प्रत्यवदत्——दशनं हि सर्पाणां स्वभावः। यत् अनेन कृतं तत् आत्मनः स्वभावस्य अनुरूपं कृतम् । यतः स्वभावः दुरतिक्रमः । ततः त्यज्यताम् अयम् ।

तत् श्रुत्वा सः ग्रामीणः तस्य पान्थस्य वचनम् अनुसृत्य तं सर्पम् अत्यजत् । सः सर्पः अपि प्राणान् प्राप्य कञ्चित् बिलं प्रविष्टः ।

यः यः यस्य स्वभावः स्यात् सः नित्यं दुरतिक्रमः ।
सुपालितेन सर्पेण पालकस्य शिशुः हतः ॥

अभ्यासः

(क) १—अपृच्छत्, अपराधी, प्रविष्टः--
इनका प्रयोग अपने वाक्यों में करो।
२—इस पाठ में से 'यात्री' अर्थ वाले शब्दों को चुनो।
३—इस पाठ में से 'कर्तरि तृतीया' और 'करणे तृतीया' के पद चुनो।

(ख) इनका अनुवाद संस्कृत में करो--
१--क्यों इस साँप को मारते हो ?
२--इस दुष्ट ने मेरे पुत्र को काटा है।
३—स्वभाव नहीं बदलता।

(ग) १—यात्री ने ग्रामीण को क्या करते देखा ?
२ – ग्रामीण ने यात्री के वचन का क्या उत्तर दिया ?
३--यात्री ने साँप को क्यों निरपराध बताया ?
४--अन्त में ग्रामीण ने क्या किया ?

ऐक्ये बलम्—१

एकस्मिन् वने चत्वारः वृषभाः परस्परं मित्रत्वेन न्यवसन्। ते एकत्र एव उपाविशन्, मिलित्वा च स्थानान्तरम् अगच्छन्, सङ्गताः एव च तृणानि अभक्षयन्। एवं ते सर्वे बलिष्ठाः, पीवराः च सञ्जाताः।

तस्मात् प्रदेशात् अनतिदूरे एव एकः सिंहः प्रतिवसतिस्म। तान् बलवतः पीवरान् वृषभान् अवलोक्य तस्य मुखं सदा जलेन आर्द्रम् अवर्तत। सः सदा अचिन्तयत्—कथम् एषां वृषभाणां सुललितं मांसं भक्षयामि इति। यदा सः तेषु एकम् अपि आक्रमितुं प्रवृत्तः तदा ते सर्वे मिलित्वा तम् आक्राम्यन्। तेन सः निरवलम्बः प्रद्रुत्य स्वप्राणान्

अरक्षत् । एवं तस्य चिन्तयमानस्य तत्र निवसतः महान् कालः जातः ।

अभ्यास

(क) इनका अनुवाद संस्कृत में करो--
वे मोटे और तगड़े हो गये ।
उसके मुँह में पानी भर आया ।
वह वहाँ देर तक चरता रहा ।

(ख) १—परस्परम्, सह, मिलित्वा—
इनका प्रयोग अपने संस्कृत-वाक्यों में करो ।

२—भक्षयामि, आक्राम्यन, वसन्तिस्म—
इन धातुओं की क्रियाओं के क्रमशः लोट् (प्र० ब), लट् (प्र० ए०) और लङ् (उ० ए०) के रूपों का प्रयोग अपने वाक्यों में करो ।

(ग) १—वन में कौन रहते थे ?
२—बैलों का परस्पर व्यवहार कैसा था ?
३—शेर कहाँ रहता था ?
४—वह क्या चाहता था ?
५—वह बैलों को क्यों नहीं मार सकता था ?

ऐक्ये बलम्—२

एकदा तम् सिंहम् एवं चिन्तयमानं समुपविष्टम् उपसृत्य धीवरः नाम जम्बुकः सप्रणामम् अपृच्छत्—राजन्! किम् एवं चिन्तायां निमग्नः भवान् ?

सिंहः प्रत्यवदत्—धीवर ! किं मे राज्येन, बलेन वा, येनाहम्❀ एतान् अस्माकं सिंहानां भोज्यान् वृषभान् वराकान् अपि हन्तुं भक्षयितुं च असमर्थः ।

❀ येनाहम्=येन+अहम् (दीर्घसन्धि)

अ, इ, उ, ऋ (ह्रस्व वा दीर्घ) से परे यदि कोई वही स्वर (ह्रस्व वा दीर्घ) हो तो दोनों के स्थान पर वही दीर्घ स्वर हो जाता है। देखो इसी पाठ में। विषादेनालम्=विषादेन+अलम्। अपीदम्=अपि+इदम्। मयामरणम्=मया+आमरणम्।

जम्बुकः अवदत्—विषादेनालम् । दुष्करम् अपीदं कार्यं मे लीलया साध्यम् । यदि भवान् मन्यते तर्हि अहं प्रज्ञायाः बलेन तथा कुर्यां यथा एते चत्वारः एव अनतिचिरं महाराजस्य भोज्यतां गच्छेयुः ।

सिंहः अभाषत—धीवर ! जम्बुकानां प्रज्ञा प्रख्याता । त्वं चेत् आत्मनः प्रज्ञायाः बलेन एतत् मे कृत्यं निष्पादयेः तर्हि मयामरणं ते किङ्करेण भाव्यम् ।

धीवरः प्रत्यवदत्—राजन् ! एतत् मे अनायासेन निष्पाद्यम् । एवं प्रतिज्ञाय सः प्राचलत् ।

अभ्यासः

(क) धीवर ! जम्बुकानां-बलं प्रख्यातम् । एतत् मे अनायासेन— । —विषादेन । इनमें रिक्त स्थानों को भरकर वाक्य पूर्ण करो ।

(ख) १—इनका प्रयोग अपने वाक्यों में करो—
उपसृत्य, चेत्, प्रतिज्ञाय ।

२—भवान् मन्यते । मे लीलासाध्यम् । भोज्यतां गच्छेयुः ।
रेखाङ्कित पदों की विभक्तियाँ और वचन बताओ ।

३—किं मे राज्येन ! स्वप्रज्ञायाः बलेन मे कृत्यं निष्पादयेः ।
मया किङ्करेण भाव्यम् ।
रेखाङ्कितों में कौन-कौन विभक्ति क्यों प्रयुक्त हैं ?

(ग) १—शेर को चिन्ता किस बात की थी ?

२—उसके पास कौन आया ?

३—शेर ने गीदड़ को क्या कहा ?

४—गीदड़ ने उसे क्या कह कर ढारस दिया ?

५—शेर और गीदड़ की बातों का सार दो।

ऐक्ये बलम्—३

सिंह-सकाशात्* चलित्वा धीवरः वृषभान्तिकम् गतवान् । तत्र गत्वा सः सर्व-बलिष्ठमेकं तेषां प्रोवाच--महाराज ! वन्दे । वृषभः अवदत्--प्रतिवन्दे । कुतः समागतः भवान् ?

धीवरः प्रोवाच--एतस्मिन् वने कश्चित् सिंहः प्रतिवसति। सः दुष्टः अस्मान् सर्वान् वनचरान् भक्षयित्वा वनम् एतत् निर्जीवं कर्तुमिच्छति । परं भवतः निश्शेषान्

---

*सिंह-सकाशात् = सिंहस्य सकाशात् [षष्ठी—तत्पुरुष] देखो नियम ग्रन्त में (परिशिष्ट में)

कर्तुं सः अक्षमः। अतः अहम् अद्य स्वप्राणान् रक्षितुं भवतां शरणमागतः।

एवं वृषभेषु चतुर्षु अपि विश्वासम् उत्पाद्य तत्रासौ निवसन् तेषां सर्वेषां विश्वासपात्रम् अजायत।

अथ एकदावसरं प्राप्य सः सर्वेषु कनिष्ठं वृषभम् एकान्ते प्रोवाच—भ्रातः! भवान् अनवरतं दुर्बलतरः जायते—इति, किम् अस्य कारणम्?

सः प्रत्यवदत्—धीवर! अनावृष्टि-वशात् सस्य-दुर्भिक्षम् एव कारणम्।

जम्बुकः अवदत्—अत्र विषादः नोचितः। अनति-दूरे एव एकं महत् सरः। तस्य तटे हरित्तृणानि, नव सस्यानि, पक्व-फल-भरिताः वृक्षाः। तेषां भक्षणेन भवतः नवजीवन-लाभः सुकरः।

अभ्यासः

(क) प्राणान् <u>रक्षितुं भवतां</u> शरणमागतः। अवसरं प्राप्य <u>सः</u> कनिष्ठं वृषभम् <u>एकान्ते</u> प्रोवाच।

इनमें रेखांकित पदों के शब्द, विभक्ति और वचन बताओ।

(ख) १—इस पाठ में से दीर्घ-सन्धि के उदाहरण चुनकर बताओ।

२—इस पाठ में से तत्पुरुष-समास के उदाहरण चुनो।

(ग) १—धीवर कहाँ गया ?

२—उसने अपने बैलों को क्या कहा ?

३—पहले उसने किस बैल को क्या कहा ?

४—बैल ने क्या उत्तर दिया ?

५—धीवर की किन बातों पर बैल को विश्वास हुआ ?

ऐक्ये बलम्—४

धीवर-वचनेष्वेवं*प्रत्ययं कृत्वा सः कनिष्ठः वृषभः तम् अनुसरन् तत् एव निविडारण्यं प्राप्तः । तत्र च तृणान्यभयेन भक्षयमाणः धीवर-निर्देशानुसारं सिंहेनाक्रान्तः मारितः च । तस्य सुललितं मांसं तौ मिलित्वा भक्षितवन्तौ ।

धीवरम् एकाकिनं प्रतिनिवृत्तम् अवलोक्य अन्यैः

---

*वचनेष्वेवम् = वचनेषु + एवम् ।

इ, उ वा ऋ (ह्रस्व वा दीर्घ) से परे यदि कोई असमान स्वर हो तो इ को य्, उ को व् और ऋ को र् हो जाता है ।

इसी पाठ में देखो—

तृणान्यभयेन = तृणानि + अभयेन । तर्ह्ययम् = तर्हि + अयम् ।

वृषभैः पृष्टः सः—धीवर ! एकाकी प्रत्यागतः असि ? क्वास्माकं चतुर्थः कनिष्ठः वृषभः ?

सः प्रत्यवदत्—सः तत्र एव सरसः तटे नवानि तृणानि भक्षयमाणः सुखं वसति। ततः तैः त्रिभिः उक्तम्—अस्मान् अपि तत्र नयतु भवान् । अत्र तृणाभावात् अस्माकं जीवनयात्रा दुष्करा । सः प्रत्यभाषत—भवताम् अभिलषितम् चेत् तर्ह्यहं सर्वान् अपि भवतः एकैकं तत्र नयेयम् ।

एवं तेषु विश्वासम् उत्पाद्य सः तेषां प्रत्येकं दिनान्तरे तत्र नीतवान् । तं च तत्र प्राप्तम् अलक्षितः एवासौ सिंहः आक्रम्य भक्षितवान् ।

एवं तेन धीवरेण स्व-धी-बलेन चत्वारः अपि वृषभाः निःशेषतां नीताः । प्रज्ञा एव बलम् ।

किं बलेन विशालेन बलं बुद्धेः बलं महत् ।
धीवरेण शृगालेन चत्वारः वृषभाः हताः ॥

अभ्यासः

(क) इनका उत्तर संस्कृत-वाक्यों में दो —
धीवरः वृषभं कुत्र अनयत् ?
त्रिभिः वृषभैः किम् उक्तम् ?
सिंहः वृषभे प्राप्ते किम् कृतवान् ?

(ख) १—तटे नव तृणानि—सुखं निवसति। प्रज्ञा एव—।
इनमें रिक्त स्थानों को भरकर वाक्य पूर्ण करो।

२—इनमें सन्धिच्छेद करो—

दिनान्तरे, तृणाभावात्।

(ग) १—धीवर पर विश्वास कर बैल कहाँ गया ?

२—वहाँ क्या हुआ ?

३—छोटे बैल को न लौटा देखकर दूसरे बैलों ने धीवर से क्या पूछा ?

४—धीवर ने क्या उत्तर दिया ?

५—धीवर बैलों को अकेला क्यों ले जाता था ?

६—इसका परिणाम क्या हुआ ?

७—इस कथा का क्या आशय है ?

गुणैः सौन्दर्यम्

कस्यचित् विप्रस्य एकः पुत्रः एका च पुत्र्यास्ताम्। तस्य पुत्रः रूपेणाप्रतिमः सुरूपः इति नाम्ना विख्यातः, पुत्री च रूप-विहीना कुरूपेति* ख्याता।

सुरूपः स्वरूपणेत्थं गर्वितः, यत् सदा रूपविहीनां कुरूपां भगिनीम् अनेकविधैः दुर्वचोभिः विषादितवान्।

---

*कुरूपेति = कुरूपा + इति।

अ (ह्रस्व वा दीर्घ) के परे यदि इ, उ वा ऋ (ह्रस्व वा दीर्घ) हो तो अ और इ के स्थान पर ए, अ और उ के स्थान पर ओ और अ और ऋ के स्थान पर अर् हो जाता है। इसे गुणसन्धि कहते हैं। इसी पाठ में देखो—

स्वरूपेणेत्थम् = स्वरूपेण + इत्थम्। कृत्वोवाच = कृत्वा + उवाच।

सा च वराका शर-तुल्यान्यपि तस्य दुर्वचनानि तूष्णीम् असहत ।

एकदा ताभ्याम् द्वाभ्याम् एव मातुः सविधे स्थापिते एकस्मिन् दर्पणे स्व-स्व-मुखाकृतेः प्रतिच्छाया दृष्टा । सुरूपः पूर्ववत् स्व-सौन्दर्य-प्रशंसां कुरूपायाः च कुरूप-निन्दां कर्तुं प्रवृत्तः । तेन विषण्णा कुरूपा रोदितुम् आरब्धा ।

दृष्ट्वेदं तयोःजननी कुरूपां सुरूपं च स्वाङ्के कृत्वोवाच— पुत्रौ, मुख-सौन्दर्यं न स्वाभाविकं सौन्दर्यम् । गुणाः एव सौन्दर्य-कारणम् । सुरूप ! त्वया सुगुणैः सुचरित्रेण च स्व-सौन्दर्यं वर्धनीयम् । त्वया च कुरूपया अपि सद्गुणैः सौन्दर्य-हीनता अपकर्तव्या ।

सौन्दर्यं नहि सौन्दर्यं गुणाः सौन्दर्यमुच्यते ।
सुरूपः गुणहीनः चेत् सदा निन्दास्पदं भवेत् ॥

अभ्यासः

(क) इनका अनुवाद संस्कृत में करो ।

लड़की का नाम कुरूपा था ।

उसने अपनी शकल शीशे में देखी ।

गुणों से सुन्दरता बढ़ाओ ।

(ख) १—कस्यचित् विप्रस्य एकः पुत्रः एका च पुत्री आस्ताम् ।

कुरूपां स्वाङ्के कृत्वा अवदत् ।

इनमें रेखांकित पदों में सन्धि करो।

२—रूपविहीना, स्व-स्व-मुखाकृतिः, सौन्दर्य-प्रशंसाम्, सौन्दर्य-कारणम्।

इनमें समस्त पदों का विग्रह करो।

(ग) १—ब्राह्मण के कौन-कौन सन्तान थी ?

२—लड़का बहिन को क्या कह कर चिढ़ाता था ?

३—उन्होंने अपना-अपना चेहरा किसमें देखा ?

४—सुरूपा ने कुरूपा को क्या कहा ?

५—उनकी माता ने उन्हें क्या कहा ?

६—इस कथा से क्या शिक्षा मिलती है ?

मौर्ख्य-फलम्—१

आसीत् बहूनां भौतिकानां मध्ये कश्चित् धनाढ्यः हरिदत्तो नाम क्वचित् मठे। सः कदाचित् केनचित् पठ्यमानात् धर्मशास्त्रात् तडाग-कर्तुः सुमहत् फलम् अशृणोत्। ततः सः धनाढ्यः तस्मात् मठात् नातिदूरे महान्तं वारिपूरितं तडागम् एकं कारयामास।

एकदा सः धनाढ्यः केनाप्युत्पाटितान्यस्य पुलिनानि व्यलोकयत। अन्येद्युः च तथैव* सः अन्यतः तस्य तडागस्य

---

*तथैव = तथा + एव।

अ (ह्रस्व या दीर्घ) से परे यदि ए वा ऐ हो तो दोनों के स्थान पर ऐ और यदि ओ वा औ हो तो दोनों के स्थान पर औ हो जाता है। इसे वृद्धि-सन्धि कहते हैं।

इसी पाठ में देखो—तस्यौदार्यम् = तस्य + औदार्यम्।

वृषभेण + एकेन = वृषभेणैकेन, आरभ्यैव = आरभ्य + एव।

तटम् उत्खातं दृष्ट्वा सोद्वेगम् स्वगतम् उवाच—अद्यप्रभृति प्रातः आरभ्यैव समस्तं वासरं स्थास्यामि द्रक्ष्यामि च कः करोत्येतत् इति। एवं पर्यालोच्य सः मठं ययौ।

अन्येद्युः यावत् एत्य सः तत्रास्ते तावत् दिवः अवतीर्य शृङ्गाभ्यां तटं खनन्तं वृषभमद्राक्षीत्। तेन तस्यौत्सुक्यं जातम् यत् वृषभेणैतेन सहाहमपि दिवं याम्येतत् विविच्योपेत्य च तत्पुच्छं हस्ताभ्याम् अगृह्णात्।

अभ्यासः

(क) अन्येद्युः, दृष्ट्वा, क्वचित—
इनका प्रयोग अपने वाक्यों में करो।

(ख) १—वृषभेणैतेन सहाहमपि दिवं याम्येतत् विविच्योपेत्य च तत्पुच्छं हस्ताभ्याम् अगृह्णात्।
इस वाक्य की सभी सन्धियों को काटो।

२—धनाढ्यः, तडाग-कर्तुः, वारि-पूरितम्—इनका विग्रह और समासों का नाम बताओ।

(ग) १—हरिदत्त कहाँ रहता था ?

२—उसने तालाब को क्यों बनवाया था ?

३—उसने तालाब के किनारे क्या देखा ?

४—इस पर उसने क्या निश्चय किया ?

५—उसने बैल की पूँछ को क्यों पकड़ा ?

मौर्ख्य-फलम्—२

ततः पुच्छाग्र-लग्नं भौतिकम् तम् उत्क्षिप्य वेगात् सः वृषः क्षणेन कैलाशं स्वधाम नीतवान्। तत्र भौतः दिव्यानि भक्ष्याणि मोदकान्यवाप्य भुञ्जानः जातानन्दः* कतिचित् दिनानि न्यवसत्।

---

*जातानन्दः = जातः आनन्दः यस्य सः (विग्रह)। यह बहुव्रीहि समास है।

इसी प्रकार के बहुव्रीहि के प्रयोग इस पाठ में देखो—

प्राप्त-मठः = प्राप्तः मठः येन सः (विग्रह))।

सञ्जात-कौतुकाः = सञ्जातं कौतुकं येषाम्, ते (विग्रह)।

बहुव्रीहि समास में—

१—पहला पद प्रायः विशेषण होता है,

२—समस्त पद विशेषण होता है,

३—इसके विग्रह में यत् (सर्वनाम) की प्रथमा-भिन्न किसी न किसी विभक्ति का प्रयोग होता है।

एकदा सः भौत-मूर्खतमः गतागतानि कुर्वन्तं तं महावृषं दृष्ट्वा दैव-मोहितः वृषस्यास्य पुच्छलग्नः 'पुनः स्वमठं गत्वा तत्र बान्धवान् पश्यामि, तेभ्यः चाद्भुतम् इदं कथयित्वा पुनः एष्यामि ।' इत्यालोच्य ततः आगच्छतः वृषस्य पुच्छम् आलम्ब्य भूतलं गतः ।

ततः प्राप्त-मठः सः भौतः अन्यैः तत्रस्थैः आश्लिष्य 'क्व गतः असि।' इति पृष्टः तं वृत्तान्तं सर्वं तेभ्यः कथितवान् । ततः सञ्जातकौतुकाः ते सर्वे तं प्रार्थन्तेस्म—'भ्रातः ! प्रसीद, अस्मान् अपि तत्र नीत्वा तानि मोदकानि भोजय इति ।' आकर्ण्य तथेत्युक्त्वा युक्तिम् उक्त्वा चापरेऽह्नि तान् तडागोपान्तम् अनयत् ।

अभ्यासः

(क) इनका अनुवाद संस्कृत में करो—

साधु को उड़ा कर बैल कैलाश पर ले गया।

बैल की पूँछ पकड़ कर पृथ्वी पर आ गया।

तब उसने प्रार्थना की।

मुझे भी मिठाई खिलाओ।

(ख) तत् आकर्ण्य तथेत्युक्त्वा युक्तिम् उक्त्वा चापरेऽह्नि तान् तडागोपान्तम् अनयत्।

इस वाक्य में रेखांकितों में सन्धि करो।

२—एष्यामि, अनयत, प्रार्थयन्तेस्म—इन क्रियाओं के धातु, लकार, पुरुष और वचन बताओ।

(ग) १—हरिदत्त को बैल कहाँ उड़ाकर ले गया ?

२—बैल को स्वर्ग से आते-जाते देखकर हरिदत्त ने क्या सोचा ?

३—जब वह मठ में पहुँचा तो दूसरों ने उससे क्या पूछा ?

४—उसने उन्हें क्या उत्तर दिया ?

५—वे सब कहाँ गये ?

मौर्ख्य-फलम्—३

सः च वृषः पूर्ववत् तत्राययौ। तेषां मुख्यः पाणिद्वयेन तस्य लाङ्गूलम् दृढम् अगृह्णात्। कश्चित् तस्य मुख्य-जनस्य चरणावगृह्णात्। अतः अपरः च तस्य धृत-चरणस्य चरणावगृह्णात्*। इत्यन्योन्य-विलग्नैः तैः भीतैः यावत् शृङ्खला रचिता तावत् सः वृषः जवात् नभः उत्पतितवान्।

*चरणावगृह्णात् = चरणौ + अगृह्णात्।

ए से परे यदि कोई स्वर हो तो उसे अय्,

ओ से परे यदि कोई स्वर हो तो उसे अव्,

ऐ से परे यदि कोई स्वर हो तो उसे आय्,

औ से परे कोई स्वर हो तो उसे आव् हो जाता है।

इसी पाठ में देखो—

पद्मकोषाकारावुभौ = पद्मकोषाकारौ + उभौ।

लाङ्गूलावलम्बि-भौते वृषभे दिवम् उत्पतितवति मुख्य-भौतं तम् अपरः भौतः पर्यपृच्छत्----'भद्र ! परिमाणं तावत् आख्याहि---दिवि यथेष्ट-सुलभानि यानि मोदकानि भक्षितानि त्वया तानि किम्परिमाणानि ।'

ततः दैव-मोहात् सः तं वृषपुच्छं विमुच्य पद्मकोषाकारावुभौ करौ संश्लिष्टौ कृत्वा यावत् 'इयत्प्रमाणानि' इति वक्ति तावत् सः अन्ये च भौताः खात् निपत्य पञ्चत्वं गताः ।

अविचार्यं न वक्तव्यं धीमतात्र कदाचन ।
अविचारित-वक्तारः भौताः ते निधनं गताः ॥

अभ्यासः

(क) इनमें रिक्त स्थानों को भर कर वाक्य पूर्ण करो—

तैः भौतैः यावत् शृङ्खला—तावत् स वृषः जवात्—उत्पतितवान् । भौताः खात् —पञ्चत्वं—।

(ख) इनमें सन्धिच्छेद करो—

धीमतात्र कदाचन । वृषः पूर्ववत् तत्रायथौ । तस्य चरणावगृह्णात् ।

(ग) १—बैल की पूँछ को पहले किसने पकड़ा ?

२—साधुओं ने क्या किया ?

३—मार्ग में एक साधु ने मुख्य साधु से क्या पूछा ?
४—उस साधु ने क्या किया ?
५—पूंछ को हाथ से छोड़ने का परिणाम क्या हुआ ?
६—इस कथा का आदर्श बताओ।

धर्मबुद्धि-कथा—१

अस्ति धरा-तले जाङ्गलाभिधः ग्रामः। तत्र मित्रद्वयं वर्तते धर्मबुद्धिः पापबुद्धिः च। अन्यदा तौ द्वावपि धना-शया देशान्तरं गतौ। कियद्भिः दिनैः प्रभूतं धनम् अर्ज-यित्वा स्वग्रामं प्रत्यागतौ परस्परं मन्त्रं कृतवन्तौ—'गृह-नीतं धनं बान्धवाः याचिष्यन्ति, चौराः वा चोरयिष्यन्ति, अग्निना वा दहिष्यते। अतः एतत् अस्य वृक्षस्य मूले भूमौ क्षिप्त्वा, अद्य यथेच्छं स्वल्पं गृहं नीयेत। पश्चात् विभज्येत शेषम्।'

तथा निर्णीय धनं च तत्र निधाय तौ निज-निज-निकेतनं गतौ हृष्ट-पुष्टौ सुखास्वाद-तत्परौ स्थितौ। अत्रान्तरे दुष्ट-

बुद्धिना यत् कृतं तत् निशम्यताम् । वस्तुतः तु तत् वक्तुम् अपि न शक्यते । यतः—

न वक्तव्यं ध्रुवं किञ्चित् पापं दृष्टं श्रुतं तथा ।
कथापि खलु पापानाम् अलम् अश्रेयसे यतः ॥

अभ्यासः

इनमें बताओ—

(क) पश्चात् विभज्येत शेषम् (वाच्य)
जाङ्गलाभिधः ग्रामः (समास-विग्रह)
अग्निना वा दहिष्यते । (कारक)
अलम् अश्रेयसे । (उपपद-विभक्ति) ।

(ख) इनमें सन्धि करो—
अन्यदा तौ द्वौ अपि धन-आशया देशान्तरं गतौ ।
सुख आस्वादतत्परौ स्थितौ ।

(ग) १—जांगल ग्राम में कौन रहते थे ?
२—वे कहां क्यों गये ?
३—उपार्जित धन अपने-अपने घर क्यों नहीं ले गये ?
४—उन्होंने उसे कहाँ गाड़ा ?

धर्मबुद्धि-कथा—२

तेन दुष्टबुद्धिना तत् द्रव्यम् उत्पाट्य गृहीत्वा च गृहम् आनीतम् । कालक्रमेण च सङ्गतौ वृक्षाधः-स्थितं द्रव्यं ग्रहीतुं गतौ यावत् अवलोकयतः तावत् तत् द्रव्यं तत्र नाविद्यत । दुष्टबुद्धिः धर्मबुद्धिम् अकथयत्—'त्वया धनं गृहीतमिति । ततः देहि तदर्धं मद्-भागम् ।'

धर्मबुद्धिना विचार्यैतत् यत् दुष्टबुद्धिना समस्तं द्रव्यं गृहीतमिति न्यायालये विज्ञापनं दत्तम् । दुष्टबुद्धिनोक्तम्—'सहस्रस्य पणः मुक्तः, एतदर्थे शपथं दापयिष्यामि ।' न्यायाधीशेनोक्तम्—'तथैवास्तु ।'

धर्मबुद्धिनापि प्रतिपन्नं तद् यदा तदा न्यायाधीशेन

प्रतिभुवौ गृहीत्वा मुक्तौ स्वस्व-गृहं गतौ ।

तदनन्तरं दुष्टबुद्धिना यत् कृतं तत् निशम्यताम् ।

ततः दुष्टबुद्धिः निज-पितरं विदितार्थं कृत्वा वृक्ष-कोटरे स्थापितवान्। उवाच च तं 'धर्मबुद्धिना धनं गृहीतम् ।' इति वक्तव्यं त्वया ।

धनलोभाभिभूतानां मतिः सर्वत्र हीयते ।

अभ्यासः

(क) इनका अनुवाद संस्कृत में करो--

दुष्टबुद्धि धन को अपने घर ले गया ।

मैं सौ की शर्त लगाता हूँ।

न्यायाधीश ने ज़मानत लेकर उन्हें छोड़ दिया ।

(ख) १--इन शब्दों का प्रयोग अपने संस्कृत-वाक्यों में करो--

गृहीत्वा, कालक्रमेण, दापयिष्यामि ।

(दापयिष्यामि--यह किस प्रकार की क्रिया है ?)

२--इनके समासों का विग्रह और नाम बताओ--

दुष्टबुद्धिना, तदर्थम्, न्यायोधीशेन, विदितार्थम् ।

(ग) १--दुष्टबुद्धि ने क्या किया ?

२—वह धर्मबुद्धि के साथ कहाँ गया ?

३—वहाँ उन्होंने क्या देखा ?

४—धर्मबुद्धि न्यायालय में क्यों गया ?

५—वहाँ पर न्यायाधीश ने क्या किया ?

६—दुष्टबुद्धि ने अपने पिता को कहाँ और क्यों छिपा दिया ?

धर्मबुद्धि-कथा—३

तदग्रिमे प्रभाते न्यायाधीशस्तौ* वादिनौ, कौतुकी लोकश्च वृक्षस्य मूले एकत्रिता:। तदा दुष्टबुद्धि: कृताञ्जलिरेवम् अभाषत—'सत्यं ब्रूहि वृक्षोत्तम! यदि द्रव्यं धर्मबुद्धिनापहृतं तदा तेन हृतमिति वाच्यम्। यदि न हृतं तदा तेन न हृतमिति वाच्यम्।'

तत् श्रुत्वा कोटर-स्थितेन तत्तातेनोच्चै: उक्तं 'सर्वलोकप्रत्यक्षं यत् धर्मबुद्धिना द्रव्यमपहृतमिति।'

---

*न्यायाधीशस्तौ = न्यायाधीश: + तौ।

लोकश्च = लोक: + च।

विसर्ग से परे त वा थ हो तो विसर्ग को स्,

विसर्ग से परे च वा छ हो तो विसर्ग को श् हो जाता है।

कृतांजलिश्च = कृतांजलि: + च।

शुद्धात्मा धर्मबुद्धिः कथमत्र विश्वसेत् ! तं शब्दं तत्पितुः परिज्ञाय सः तत्र कोटरे वह्निं जज्वाल । तस्य पिता तदाग्नि-दग्ध-शरीरः फूत्कुर्वन् कोटरात् निष्क्रान्त-वान्, सर्वं च वृत्तं न्यायाधीशस्य पुरतः निवेदितवान् ।

तदा सकोपः न्यायाधीशः दुष्टबुद्धेः निग्रहं विधाय धर्मबुद्धिं समस्तं धनं दापयामास ।

यः करोति हि दुर्वृत्तम् असौ तत्फलमश्नुते ।
दुष्टबुद्धिः यथा पापं कृत्वा तत्फलमाप्तवान् ।।

अभ्यासः

(क) इनके उत्तर संस्कृत-वाक्यों में दो—

ते सर्वे कुत्र एकत्रिताः ?

किं परिज्ञाय धर्मबुद्धिः कोटरे वह्निं जज्वाल ?

सकोपः न्यायाधीशः किं कृतवान् ?

(ख) द्रव्यं धर्मबुद्धिना (धर्मबुद्धिः) अपहृतम् ।

कोटरे वह्निं (वह्निः) जज्वाल ।

इन वाक्यों में कोष्ठकस्थित रूपों के पूर्वस्थित रूपों को कोष्ठकस्थित रूपों से बदलकर इन्हीं वाक्यों को फिर से लिखो ।

(ग) १—दुष्टबुद्धि ने वृक्ष को क्या कहा ?

२—वृक्ष के अन्दर से क्या आवाज़ आई ?

३—तब धर्मबुद्धि ने क्या किया ?

४—वृक्ष को आग लगाने पर क्या हुआ ?

५—न्यायाधीश ने क्या निर्णय किया ?

६—इस कथा की शिक्षा क्या है ?

मृग-काकयोः—१

अस्ति मगधदेशे काचित् सुरम्या चम्पकवती नामारण्यानी । तत्र चिरात् महता स्नेहेन मृग-काकौ* निवसतः । एकदा सः मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्ट-पुष्टाङ्गः केनचित् शृगालेनावलोकितः । तं दृष्ट्वा शृगालः अचिन्तयत्—'आः ! कथम् एतन्मांसं सुललितं भक्षयामि । भवतु, विश्वासं तावत् उत्पादयामि ।' इत्यालोच्योपसृत्य मृगमब्रवीत्—'मित्र ! कुशलं ते ?' मृगेणोक्तम्—'कस्त्वम् ?' सः ब्रूते—'क्षुद्रबुद्धिनामा जम्बुकः अहम् । अत्रारण्ये बन्धु-

---

*मृग-काकौ = मृगश्च काकश्च (विग्रह)

कई प्रथमान्त संज्ञा-शब्द जब समस्त होते हैं तो उसे द्वन्द्व-समास कहते हैं ।

द्वन्द्वसमस्त पदों के विग्रह में प्रत्येक पद के साथ 'च' का प्रयोग होता है ।

हीनः मृतवत् निवसामि । इदानीं त्वां मित्रम् आसाद्य पुनः सबन्धुः जीवलोकं प्रविष्टः अस्मि । अधुना तवानुचरेण मया सर्वथा भवितव्यम् ।'

मृगेणोक्तम्–'एवम् अस्तु ।' ततः पश्चात् अस्तं गते सवितरि तौ मृगस्य वासभूमिं गतौ । तत्र चम्पक-वृक्ष-शाखायां सुबुद्धिनामा काकः मृगस्य चिरमित्रं निवसति। तौ दृष्ट्वा काकः अवदत्–'सखे ! कः अयं द्वितीयः ?' मृगः ब्रूते—'जम्बुकः अयम् अस्मत्-सख्यम् इच्छन् आगतः ।'

अभ्यासः

(क) इनका अनुवाद संस्कृत में करो—
वहाँ मृग और कव्वा दो मित्र रहते थे ।
मृग ने पूछा तुम कौन हो ?
यह हमारा मित्र बनने को आया है ।

(ख) तं दृष्ट्वा शृगालः अचिन्तयत् (कर्म)
मित्र ! कुशलं ते ? (क्रिया)
सखे ! कः अयं द्वितीयः ? (कर्ता)
इन वाक्यों में कर्म, क्रिया और कर्ता क्रमशः बताओ ।

(ग) १—मृग और कव्वा कहाँ रहते थे ?
२—वहाँ और कौन आया ?
३—गीदड़ ने मृग से क्या कहा ?
४—कव्वे ने मृग से गीदड़ के विषय में क्या कहा ?

मृग-काकयोः—२

मृगस्य वचनं श्रुत्वा काकः ब्रूते—'मित्र ! अकस्मात् आगन्तुना सह मैत्री न युक्ता।' ततः जम्बुक* आह—भद्र ! मृगस्य प्रथम-दर्शन-दिने भवन्तः अपि अज्ञात-कुल-शीला एव। अत आरभ्य यथायं मृगः मम बन्धुः तथा भवान् अपि।

---

*जम्बुक आह = जम्बुकः + आह।

१—विसर्ग से पूर्व यदि अ हो और परे अ-भिन्न कोई स्वर हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है।

२—विसर्ग से पूर्व यदि आ हो और परे कोई स्वर वा वर्गों के तीसरे, चौथे, पांचवे वर्ण वा य र ल व ह में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है।

अज्ञात-कुल-शीला एव = अज्ञात-कुल-शीलाः + एव।

३—सः और एषः के विसर्ग का सदा लोप होता है, परन्तु परे 'अ' हो तो नहीं होता।

सः + क्षेत्रपतिः = स क्षेत्रपतिः। (अगले पाठ में देखो)

अनन्तरं जम्बुकः तत्रागतः, उपविश्य चाचिन्तयत् --'तावत् अस्माकं कपट-प्रबन्धेन मनोरथः सिद्धः । एतस्योत्कृत्यमानस्य मांसानि बाहुल्येन मम भोजनानि भविष्यन्ति ।'

मृगः अवदत्--'किम् अनेन प्रश्नोत्तरेण ? सर्वैः एकत्र विश्रम्भालापैः सुखिभिः स्थीयताम् ।' काकेनोक्तम्—'एवम् अस्तु ।'

एकदा निभृतं शृगालः मृगं ब्रूते—'सखे ! अस्मिन् वनैकदेशे सस्यपूर्णं क्षेत्रम् अस्ति । तत् अहं त्वां नीत्वा दर्शयामि ।'

तथा कृते सति मृगः प्रत्यहं तत्र गत्वा सस्यं खादति । अथ एकदा क्षेत्रपतिना तथा केनापि खादितं क्षेत्रं दृष्ट्वा तत्र पाशः योजितः । अनन्तरं पुनरागतः मृगः पाशैः बद्धः । तदा सः अचिन्तयत्—'कः माम् इतः कालपाशात् इव व्याधपाशात् त्रातुं समर्थः मित्रात् अन्यः !'

अभ्यासः

(क) अनन्तरं जम्बुकः तत्रागतः, उपविश्य चाचिन्तयत् । एतस्योत्कृत्यमानस्य मांसानि मम भोजनानि भविष्यन्ति । इनमें सन्धिच्छेद करो ।

(ख) इन रिक्त स्थानों को भरकर वाक्य पूर्ण करो—

किम्—उत्तरेण ?

तत्—त्वां दर्शयामि ।

व्याधपाशात् त्रातुं—मित्रात्—।

इनमें उत्तरेण में तृतीया, त्वाम् में द्वितीया, मित्रात् में पंचमी क्यों है ?

(ग) १—कव्वे ने मृग को क्या कहा ?

२—गीदड़ ने उसका क्या उत्तर दिया ?

३—गीदड़ मृग को कहाँ ले गया ?

४—वहाँ पर मृग पर क्या आपत्ति आई ?

५—इस पर गीदड़ क्यों प्रसन्न था ?

मृग-काकयोः—३

मृगस्तम् आगतं शृगालं दृष्ट्वोल्लसितो* ब्रूते—'सखे ! छिन्धि मम बन्धनम् । सत्वरं त्रायस्व माम् ।' जम्बुकः पाशं विलोक्य मुहुः मुहुः अचिन्तयत्—'दृढस्तावत् अयं बन्धः' । ब्रूते च—'मित्र ! स्नायुनिर्मिता एते पाशा, तत् अद्य भट्टारकवारे कथम् एतान् दन्तैः स्पृशामि । प्रभाते यत् त्वया वक्तव्यं तत् कर्तव्यम् । अनन्तरं स काकः प्रदोष-काले मृगम् अनागतम् अवलोक्ये-

---

*उल्लसितो ब्रूते = उल्लसितः + ब्रूते ।

अ से परे यदि विसर्ग हो और परे अ वा वर्गों के तीसरे, चौथे, पाँचवें वर्ण वा य र ल व ह—इनमें से कोई एक वर्ण हो तो विसर्ग को उ हो जाता है । (उ के साथ पूर्व अ को गुणसन्धि द्वारा गुण (ओ) हो जाता है ।)

काको ब्रूते = काकः + ब्रूते = काक + उ + ब्रूते = काको ब्रूते ।

तस्ततः अन्विष्य तं तथाविधं दृष्ट्वोवाच--'सखे ! किम् एतत् ?' मृगेणोक्तम्--अवधीरित-सुहृद्-वाक्यस्य फलम एतत् ।'

काको ब्रूते--'स वञ्चकः क्व आस्ते?' मृगेणोक्तम्--'मन्मांसार्थी तिष्ठत्यत्रैव ।' काको ब्रूते--'उक्तमेव मया पूर्वम् यत् अकस्मात् आगन्तुना सह मैत्री न युक्ता ।'

अथ प्रभाते स क्षेत्रपतिः लगुड-हस्तः तत्प्रदेशं प्रति आगच्छन् काकेनावलोकितः ।

अभ्यासः

(क) स्नायुनिर्मिता एते पाशाः । (स्नायु के साथ उचित विभक्ति लगाओ ।)

कथम् एतान् दन्तैः स्पृशामि । ('एतान' के स्थान पर एते रखकर वाक्य बदलो ।)

उक्तमेव मया पूर्वम् ('मया' के स्थान पर 'अहम' रखकर वाक्य बदलो ।)

(ख) १—मृगम् अनागतम् अवलोक्येतस्ततः अन्विष्य तं तथा-दृष्ट्वोवाच ।

मन्मांसार्थी तिष्ठत्यत्रैव ।

रेखांकितों में संधिच्छेद करो ।

स्नायुनिर्मिताः, अवधीरित-सुहृद्-वाक्यस्य, लगुडहस्तः—इनके विग्रह करो और समासों के नाम बताओ ।

(ग) १—गीदड़ को देखकर मृग क्यों प्रसन्न हुआ ?
२—मृग को देखकर गीदड़ क्यों प्रसन्न था ?
३—उसने मन में क्या कहा ?
४—उसने मृग को क्या कहा ?
५—कव्वे ने मृग को क्या कहा ?

मृग-काकयोः—४

तम् अवलोक्य काकेनोक्तम्—'सखे मृग ! त्वम् आत्मानं मृतवत् सन्दर्श्य वातेनोदरं पूरयित्वा पादान् स्तब्धीकृत्वा तिष्ठ । अहं तव चक्षुषी चञ्च्वा लिखामि । यदाहं शब्दं करोमि तदा त्वया उत्थाय सत्वरं पलायितव्यम् ।

मृगोऽपि* तथैव काक-वचनेन स्थितः । तदा क्षेत्रपतिना हर्षोत्फुल्ल-लोचनेन तथाविधो मृग आलोकितः । ततः स 'आः पाप ! स्वयं मृतोऽसि ।' इत्युक्त्वा मृगं

---

*मृगोऽपि = मृगः + अपि ।

जब विसर्ग को ओ (अ + उ = ओ) हो जाता है तो उसके परे यदि अ हो तो उसका लोप होकर उसके स्थान पर ऽ (अर्धाकार) रह जाता है।

मृगो + अपि...मृगोऽपि । पलायितोऽसौ = पलायितः + असौ ।

सत्वरोऽभवत् = सत्वरः + अभवत् ।

बन्धनात् मोचयित्वा पाशान् ग्रहीतुं सत्वरोऽभवत्। ततः काकः शब्दम् अकरोत्। काक-शब्दं श्रुत्वा सत्वरम् उत्थाय पलायितोऽसौ मृगः । तम् उद्दिश्य क्षेत्रपतिना क्षिप्तेन लगुडेन समीपे एव गुल्मान्तः-निभृतः स शृगालो हतः । तथा चोक्तम्—

त्रिभिः वर्षैः त्रिभिः मासैः त्रिभिः पक्षैः त्रिभिः दिनैः।
कृतानां पाप-पुण्यानाम् फलम् अत्रैव भुज्यते ॥

अभ्यासः

(ख) इनका अनुवाद संस्कृत में करो—
कव्वे ने शब्द किया और मृग उठकर भाग गया।
तुम पेट को वायु से फुलाओ।
शिकारी जाल इकट्ठा करने लगा।

(ख) १—फलम् अत्रैव भुज्यते ।
लगुडेन शृगालः हतः ।
क्षेत्रपतिना मृगः अवलोकितः ।
इनमें रेखांकित पदों का परिचय दो।
२—कर्तरि तृतीया और करणे तृतीया का भेद बताओ।

(ग) १—कव्वे ने मृग को जाल से छूटने की क्या युक्ति बतलाई ?
२—मृग को देखकर शिकारी क्यों प्रसन्न था ?
३—कव्वे के शब्द करने पर मृग ने क्या किया ?
४—लाठी किसने मारी और किसे लगी ?
५—इस कथा का आदर्श बताओ।

मूर्खः कूर्मः—१

अस्ति मगधदेशे फुल्लोत्पलाभिधानं सरः । तत्र चिरात् संकट-विकट-नामानौ द्वौ कूर्मौ प्रतिवसतः। तयोर्मित्रं*कम्बुग्रीव-नामा कूर्मः प्रतिवसति ।

अथैकदा कैश्चित् धीवरैरागत्योक्तम्—'अद्यास्माभिरत्रोपित्वा प्रातः मत्स्य-कूर्मादयो हन्तव्याः ।' तत् आकर्ण्य कूर्मो हंसावाह—'सुहृदौ ! श्रुतोऽयं धीवरालापः ? अधुना मया किं कर्तव्यम् ?'

---

*तयोर्मित्रम् = तयोः + मित्रम् ।
यदि विसर्ग से पूर्व अ-आ–भिन्न कोई स्वर हो और परे कोई स्वर, वर्गों का तीसरा, चौथा, पांचवां वर्ण, कोई अन्तःस्थ वर्ण (य र ल व) वा ह हो तो विसर्ग को र् हो जाता है।
अस्माभिरद्य = अस्माभिः + अद्य । धीवरैरागत्य = धीवरैः + आगत्य ।

तावाहतुः–'प्रातर्यत् उचितं तत् क्रियेत ।' कूर्मो ब्रूते—'मैवम् । यथाहम् अन्यं ह्रदम् अद्यैव प्राप्नोमि तथा क्रियताम् ।' हंसावाहतुः—'जलाशयान्तरे प्राप्ते तव कुशलम् । स्थले गच्छतः ते कः विधिः ?' कूर्म आह–'यथाहं युवाभ्यां सहाकाश-वर्त्मना यामि,स उपायः विधीयताम् ।' हंसौ ब्रूतः–'कथम् उपायः सम्भवति ?' कच्छपो वदति—'युवाभ्यां चञ्चु-धृतं काष्ट-खण्डम् एकं मया मुखेनावलम्बितव्यम् । युवयोःपक्ष-बलेनाहम् अपि सुखेन यास्यामि ।'

अभ्यासः

(क) इनमें रिक्त स्थानों पर उचित पद रखकर वाक्य पूर्ण करो—

सुहृदौ !—अयं धीवरालापः ?

युवयोः पक्ष—अहम् अपि सुखेन—।

तत्—कूर्मः हंसौ—।

(ख) १—रेखाङ्कितों में सन्धिच्छेद करो—

काष्ठ-खण्डम् एकं मया मुखेनावलम्बितव्यम् ।

फुल्लोत्पलाभिधानं सरः ।

अथैकदा कैश्चित् धीवरैस्तत्रागत्योक्तम् !

२—सरः, द्वौ, युवाभ्याम्—

इन रूपों के शब्द, विभक्ति और वचन बताकर इनके तृतीया, पंचमी और सप्तमी के रूप क्रमशः दो।

(ग) १—तालाब में कौन-कौन रहते थे ?

२—हंस क्यों तालाब छोड़ना चाहते थे ?

३—कछुआ उनके साथ जाने का क्यों आग्रह करता था ?

४—कछुआ हंसों के साथ क्यों नहीं जा सकता था ?

५—उसने क्या युक्ति बताई ?

मूर्खः कूर्मः—२

हंसौ ब्रूतः—'आवाभ्यां नीयमानं त्वाम् अवलोक्य लोकैः किञ्चित् वक्तव्यम् एव । तत् आकर्ण्य यदि त्वम् उत्तरं दास्यसि तर्हि त्वन्मरणं निश्चितम् । तत् सर्वथात्रैव स्थीयताम् ।'

कूर्मो ब्रूते—'किम् अहम् अज्ञः ? न मया किम् अपि वक्तव्यम् ।'

ततः तथानुष्ठिते तथाविधं कूर्मम् अवलोक्य सर्वे गोरक्षकाः पश्चात् धावन्ति वदन्ति च ।

तत्र कश्चित् आह—'यद्ययं कूर्मः पतति, तदात्रैव पक्त्वा खादितव्यः ।'

कश्चित् वदति—'अत्रैव दग्ध्वा खादितव्यः ।'

कश्चित् ब्रूते—'गृहं नीत्वा भक्षणीयः ।'

तत् परुष-वचनं श्रुत्वा स कूर्मः कोपाविष्टो विस्मृत-पूर्व-संस्कारः प्राह—'युष्माभिर्भस्म भक्षयितव्यम् ।'

इति वदन् एव पतितो गो-रक्षकैर्व्यापादितश्च ।

सुहृदां हित-कामानां यो वाक्यं नाभिनन्दति ।
स कूर्म इव दुर्बुद्धिः काष्ठात् भ्रष्टो विनश्यति ॥

अभ्यासः

(क) किम् अवलोक्य लोकाः पश्चात् धावन्तिस्म ?
एकः किम् अवदत्?
अपरः च किम् अवदत् ?

(ख) इनका प्रयोग अपने वाक्यों में करो—
खादितव्यम्, स्थीयताम्, प्राह ।

(ग) १—कछुए की युक्ति को सुनकर हंसों ने क्या कहा ?
२—कछुए ने क्या उत्तर दिया ?
३—कछुए को देखकर लोग क्या कहते थे ?
४—कछुए को क्रोध क्यों आया ?
५—उसने क्या उत्तर दिया ?
६—परिणाम क्या हुआ ?
७—इस कथा का आदर्श बताओ ?

कृपण-कथा—१

न ददाति न चाश्नाति धनं रक्षति जीववत् ।
प्रातरस्मरणीयत्वात् कृपणः कस्य नाप्रियः ॥१॥

आसीन्* मथुरायां गूढधनो नाम वैश्यः । स च वाणिज्यादिभिर्वर्तु लीकृत-वित्तः परमकृपणो बभूव । एकदा दुर्भिक्षे प्रत्यासन्ने चिन्तितवान् यत्—'अस्मिन् दुर्भिक्षे मम क्लेशार्जितानि वित्तानि पुत्र-कलत्रादिभिः खादयितव्यानि, मया च धन-शोकेन मर्त्तव्यम् । तन्न भद्रम् यतः—

*आसीन् मथुरायाम् = आसीत् + मथुरायाम् ।

किसी वर्ग के पहले वर्ण (क् च् ट् त् प्) से परे यदि किसी वर्ग का पांचवां (ङ् ञ् ण् न् म्) वर्ण हो तो पहले वर्ण को उसी वर्ग का पांचवां वर्ण हो जाता है ।

तन्न = तत् + न । तन्मम = तत् + मम ।

एकाकी पुरुषः श्रीमान् धनं तस्य परं सुहृत् ।
अन्ये च सुहृदः सर्वे धन-मूलं कुटुम्बकम् ॥२॥

तेन परालक्ष्यस्थाने तानि वित्तानि धृत्वा निश्चिन्तो भवामि ।' इति परामृश्य तथा कृतवान् ।

ततो देशे दुर्भिक्षेणाक्रान्ते परिवारान् सर्वान् अन्नेन विना म्रियमाणान् पश्यन् अपि स कस्मैचित् किमपि न प्रददौ । किञ्च, परिवारैः कण्ठ-गत-प्राणैर्याच्यमान इदं पद्यं पपाठ—

कृपणस्य धनं प्राणाः प्रार्थयद्भिश्च तन्मम ।
प्राणाः किं नैव गृह्यन्ते यतो न स्युर्धने शुचः ॥३॥

ततस्तस्य पुत्र-कलत्रादयः सर्वे विनान्नेनैव मृताः ।

अभ्यासः

(क) इनका अनुवाद संस्कृत में करो—
उसने व्यापार से बहुत धन कमाया ।
वह दूसरों को अन्न के बिना मरते देखता रहता ।
उसकी स्त्री और पुत्र सब मर गये ।

(ख) १—रेखांकितों में सन्धिच्छेद करो—
कृपणः कस्य नाप्रियः । सर्वो विनान्नेनैव मृताः ।

२—अन्नेन विना म्रियमाणान् पश्यन् । इस वाक्य में

'अन्नेन' में तृतीया विभक्ति क्यों है ?

३—इन समस्त पदों का विग्रह करो—

गूढ़-धनः, धन-मूलम्, कण्ठ-गत-प्राणैः ।

(ग) १—कृपण से लोग क्यों घृणा करते हैं ?

२—दुर्भिक्ष पड़ने पर कृपण ने क्या सोचा ?

३—वह दुखियों को धन क्यों नहीं देता था ?

४—लोग जब उससे धन माँगते थे तो वह क्या कहता था ?

५—इसका परिणाम क्या हुआ ?

कृपण-कथा—२

पुत्र-कलत्रादिषु परिवारेषु मृतेषु तद्वियोगाकुलः* प्राणमात्रावशेषः स परामृष्टवान्—

यन्न पुत्रकलत्रेभ्यो दत्तं वित्तं मयार्जितम् ।
तन्निज-प्राण-रक्षार्थं कथं भोक्ष्ये निराकुलः ॥४॥

एवं विमृश्य स स्व-प्राण-रक्षार्थमपि वित्तं न विनियुङ्क्ते । उपवासेन दिनानि गमयन्तं तमतिदुर्बलं दृष्ट्वा

---

* तत्+वियोगाकुलः
=तद्वियोगाकुलः ।

किसी वर्ग के प्रथम वर्ण (क्, च्, ट्, त्, प्) से परे यदि किसी वर्ग का तृतीय, चतुर्थ वर्ण, अन्तःस्थ वर्ण, ह् वा कोई स्वर हो तो उसे अपने वर्ग का तीसरा वर्ण हो जाता है ।

यदुत्साहात्=यत्+उत्साहात् । तद्धनम्=तत्+धनम् । चेद्विनश्यति=चेत्+विनश्यति ।

तन्नगरवासिनः कारुणिकाः पुरुषाः कतिचित् प्रोचुः—'भोः कृपण ! किं करिष्यस्येतेन धनेन ? विद्यमानेऽपि धने निजप्राणान् नश्यतोऽनुमन्यसे। उचितमेवैतत्—

अर्जने लभते खेदं गते शोकं च विन्दति।
नाप्नोति कृपणो वित्ते दान-भोग-भवं सुखम् ॥५॥

अपि च।

दीयते न यदुत्साहात् भुज्यते यन्न कामतः।
तद्धनं ह्यतिदुःखार्थं खेदार्थं चेद् विनश्यति ॥६॥

गूढधन उवाच—'अयि नगरवासिनः! किमपि कुरुत, मया प्राण-व्ययेनापि धन-व्ययो न स्वीक्रियते।' त ऊचुः—'कृपण ! एवं चेत् राज्ञा चौरेण वा ग्रहीतव्यं त्वयि विपन्ने तद्धनम्।' गूढधन उवाच—'अन्यस्यैव बुद्धिविहीनस्य धनमन्ये गृह्णन्ति। मया स्वकीय-धनं गले बद्ध्वा मर्त्तव्यम्।'

अभ्यासः

(क) इनमें रिक्त स्थानों को भरो—

नाप्नोति—वित्ते दान—भवं—।

मया स्वकीयं—गले—मर्त्तव्यम्।

एवं विमृश्य स प्राणरक्षार्थम् अपि—न विनियुङ्क्ते।

(ख) इनमें सन्धि करो—

दीयते न यत् उत्साहात् । ते ऊचुः ।
किं करिष्यसि एतेन धनेन ?
यत् न पुत्र-कलत्रेभ्यः दत्तम् ।
मुच्यते यत् न कामतः ।

(ग) १—जब कृपण के परिवार के सब लोग मर गये तो उसने क्या सोचा ?
२—इस पर लोग उसे क्या कहते थे ?
३—इसका वह क्या उत्तर देता था ?
४—धन का यदि अच्छा उपयोग न किया जाय तो क्या परिणाम होता है ?

कृपण-कथा—३

एवं नगरवासिनः अभिधाय धन-पोटलिकां गृहीत्वा स समुद्र-तटं जगाम। तत्र च कञ्चिन्नाविकमुपगम्याह—'भ्रातर्नाविक ! अमो दुस्त्यजा मम प्राणाः त्यक्तुकामेनापि मया त्यक्तुं न शक्यन्ते। ततस्त्वं परिवार-वियोग-शोकाकुलं मां समुद्रे मज्जयित्वा मारय। तद्-वेतनत्वेन तुभ्यमेकं सुवर्ण-खण्डं दास्यामि।'

नाविक उवाच—'प्रथमं देहि मे सुवर्ण-खण्डं ततः ते समीहितं करिष्ये। कृपणानां को विश्वासः।' ततः स कृपणः बहूनि सुवर्ण-खण्डानि दित्सया दर्शयित्वा पुनरब्रवीत्—'भ्रातर्नाविक ! सुवर्णानि दाह-विशुद्धानि परस्मै दातुमशक्यानि, तत्पुण्यार्थमेव मां मारय।'

नाविकस्तानि सुवर्ण-खण्डानि दृष्ट्वा सञ्जात-धन-लोभस्तमुवाच—'मा दास्यसि सुवर्णखण्डं, पुण्यार्थमेव मारयिष्यामि।' इत्यभिधाय तं जले मज्जयित्वा मारयामास, तस्य सुवर्णानि च गृहीत्वा नाविकः परम-हर्षितोऽभवत्।

जनयति हृदि खेदं मङ्गलं न प्रसूते,
परिहरति यशांसि ग्लानिमाविष्करोति।
उपकृति-रहितानां सर्व-भोग-च्युतानाम्,
कृपण-कर-गतानां संपदां दुर्विपाकः ॥ ६ ॥

अभ्यासः

क) कृपणः कुत्र अगच्छत्?
समुद्र-तटे स कम् अपश्यत्?
नाविकः तं कुत्र मज्जयित्वा मारयामास?

(ख) १—इनके वाच्य बदलो—
प्रथमं देहि मे सुवर्ण-खण्डम्।
पुण्यार्थम् एव मां मारय।
ततः ते समीहितं करिष्ये।

२—इनमें सन्धिच्छेद करो—
कञ्चिन्नाविकमुपगम्याह। दुस्त्यजा मम प्राणाः।

भ्रातर्नाविक । तद्वेतनत्वेन । परमहर्षितोऽभवत् ।

३—जनयति, मारय—ये किस प्रकार की क्रियायें हैं ?

(ग) १—कृपण समुद्रतट पर क्यों गया ?

२—वहाँ उसने नाविक से क्या कहा ?

३—नाविक ने उसे कैसे मारा ?

४—कृपणों के धन का क्या फल होता है ?

कर्णास्त्र-वृत्तान्तः—१

(अभिनयः)

(तथा प्रविशति शल्य-सारथिः रथस्थः कर्णः)

कर्णः—भो मद्रराज ! श्रूयतां ममास्त्रस्य वृत्तान्तः ।

शल्यः—ममाप्यस्ति कौतूहलमेतं वृत्तान्तं श्रोतुम् ।

कर्णः—पूर्वमेवाहं जामदग्न्यस्य सकाशं गतवानस्मि ।

शल्यः—ततस्ततः ?

कर्णः—ततः—

विद्युल्-लता-कपिल-तुङ्ग-जटा-कलाप-
मुद्यत्-प्रभा-वलयिनं परशुं दधानम् ।
क्षत्रान्तकं मुनिवरं भृगु-वंश-केतुं
गत्वा प्रणम्य निकटे निभृतः स्थितोऽस्मि ॥१॥

शल्यः——ततस्ततः ?

कर्णः——ततस्तेन जामदग्न्येन ममाशीर्वचनं दत्त्वा पृष्टोऽस्मि——'को भवान् ? किमर्थमिहागत इति ?'

शल्यः——ततस्ततः ?

कर्णः——तत उक्तोऽहं भगवता——'ब्राह्मणेषूपदेशं करिष्यामि, न क्षत्रियाणाम्' इति ।

शल्यः——अस्ति खलु भगवतः क्षत्रियवंश्यैः पूर्ववैरम् । ततस्ततः ?

कर्णः—कृत्ते वज्रमुखेन नाम कृमिणा दैवान् ममोरु-द्वये,
निद्राच्छेद-भयादसह्यत गुरोर्धैर्यात् तदा वेदना ।
उत्थाय क्षतजाप्लुतः स सहसा रोषानलोद्दीपितो,
बुद्ध्वा मांच शशाप'काल-विफलान्यस्त्राणि तेसन्त्विति।२।

शल्यः—अहो ! कष्टमभिहितं तत्रभवता ।

अभ्यासः

(क) इनका अनुवाद संस्कृत में करो—

तब मैं परशुराम के पास गया ।

परशुराम का क्षत्रियों से वैर है ।

तुम्हारे शस्त्र निष्फल हों ।

(ख) १—इनका प्रयोग अपने वाक्यों में करो—

सहसा, प्रणम्य, सकाशम् ।

२—इन समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बताओ ।

क्षत्रान्तकम्, भृगु-वंश-केतुम्, निद्राच्छेद-भयात् ।

(ग) १—शल्य कौन था ?

२—कर्ण कौन था ?

३—वे कहाँ थे ?

४—कर्ण परशुराम के पास क्यों गया ?

५—कर्ण ने परशुराम से क्यों असत्य बोला ?

६—परशुराम का क्षत्रियों से वैर क्यों था ?

७—परशुराम ने कर्ण को क्यों शाप दिया ?

कर्णास्त्र-वृत्तान्तः—२

कर्णः—परीक्षामहे तावदस्त्रस्य वृत्तान्तम् ।

(तथा कृत्वा) एतान्यस्त्राणि निर्वीर्याणीव लक्ष्यन्ते ।

अपि च,

इमे हि दैन्येन निमीलितेक्षणाः,
मुहुः स्खलन्तो विवशास्तुरङ्गमाः ।
गजाश्च सप्तच्छद-दान-गन्धिनो
निवेदयन्तीव रणे निवर्तनम् ॥३॥

शंख-दुन्दुभयश्च निश्शब्दाः ।

शल्यः—भोः ! कष्टं खल्विदम् ।

कर्णः—शल्यराज ! अलमलं विषादेन ।

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा च लभते यशः ।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ।।४।।

इमे हि युद्धेष्वनिर्वर्तिताशा
हया सुपर्णेन समान-वेगाः ।
श्रीमत्सु काम्बोज-कुलेषु जाता
रक्षन्त्यमी यद्यपि रक्षितव्यम् ।।५।।

अक्षयोऽस्तु गो-ब्राह्मणानाम्, अक्षयोऽस्तु पति-व्रतानाम्, अक्षयोऽस्तु रणेऽपराङ्मुखानां योधपुरुषाणाम्।

समर-मुखमसह्यं पाण्डवानां प्रविश्य
प्रथित-गुण-गणाढ्यं धर्मराजं च बद्ध्वा ।
मम शर-वर-वेगैरर्जुनं पातयित्वा
वनमिव हतसिंहं सुप्रवेशं करोमि ।।६।।

शल्यराज ! यावद्रथमारोहावः ।

शल्य––बाढम् !

(उभौ रथारोहणं नाटयतः)

अभ्यासः

(क) इनका अनुवाद संस्कृत में करो—
मेरे अस्त्र निर्बल दिखाई देते हैं ।

युद्ध में निष्फलता नहीं होती।
आओ, रथ पर चढ़ें।

(ख) १—रेखाङ्कितों में सन्धिच्छेद करो—
रक्षन्त्यमी यद्यपि रक्षितव्यम्।
यावद्रथमारोहाव:।
शंख-दुंदुभयश्च निश्शब्दा।

२—इनका विग्रह बताओ—
निमीलितेक्ष; शंख-दुन्दुभय:, गो-ब्राह्मणानाम्, हतसिंहम्।

(ग) १—कर्ण ने अस्त्रों को निष्फल देखकर क्या कहा ?
२—रण में जाना निष्फल क्यों नहीं ?
३—कर्ण के वचनों का सार दो।

पद्य-खण्डः

ईश-स्तवः—१

(१)

त्वं वै सर्वचराचरं सृजसि भोः,
त्वं पासि सर्वं जगत्,
त्वं वै संहरसि प्रपञ्चमखिलम्,
तस्य त्वमेकाश्रयः।
त्वं वै स्थावर-जङ्गमं जगदिदं
प्रेम्णानुगृह्णासि भोः,
त्वं सर्वस्य निदानमीश, जगतः
तस्मै नमस्ते प्रभो ॥

(२)

त्वं ब्रह्माखिल-लोक-सृष्टि-निपुणः,
त्वं विष्णुरस्याविता,
त्वं रुद्रोऽसि समस्त-लोक-हरणः,
त्वं वै महेशोऽप्यसि ।
त्वं साक्षाद्धि सदाशिवो गरणपतिः
बाधा-हरश्शंकरः,
त्वं सर्वस्य निदानमीश, जगतः
तस्मै नमस्ते प्रभो ॥

(३)

किं वै किं नु करोमि ? कं नु शरणं
यामि ? व्रजामि क्व वा ?
कं पश्यामि ? कमालपामि ? कतमं
पृच्छामि ? यच्छामि किम् ?
गत्वा कुत्र, कमत्र वा प्रतिदिनं
नत्वा, विदित्वाथ किम् ?
कृत्वा किं हि विभो तवेश ! वरदं
प्राप्नोमि पादाम्बुजम् ?

(क) इनके अर्थ बताओ—

त्वं सर्वस्य निदानम् ।

बाधाहरश्शंकरः ।

वरदं प्राप्नोमि पादाम्बुजम् ।

(ख) १—इनमें सन्धिच्छेद करो—

त्वमेकाश्रयः ।

प्रेम्णानुगृह्णासि भोः ।

त्वं विष्णुरस्याविता ।

त्वं साक्षाद्धि सदाशिवो गणपतिः ।

२—अविता, जगतः, विभो—

इनके शब्द, विभक्ति और वचन बताओ ।

(ग) १—'ईश-स्तवः' में ईश्वर के किन गुणों का वर्णन किया गया है ?

२—जगत् की रचना, पालन और संहार के लिये कौन-कौन देवता यहाँ बताये हैं ?

३—स्थावर और जंगम से क्या अभिप्राय है ?

ईश-स्तवः—२

(१)

तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्,
तं दैवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्,
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥

(२)

नमस्ते सते ते जगत्-कारणाय,
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय ।
नमोऽद्वैत-रूपाय मुक्ति-प्रदाय,
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय ॥

(३)

त्वमेकं शरण्यं, त्वमेकं वरेण्यम्,
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम् ।
त्वमेकं जगत्-कर्तृ-पातृ-प्रहर्तृ,
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ।।

(४)

वयं त्वां स्मरामो, वयं त्वां भजामो,
वयं त्वां जगत्साक्षि-रूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशम्,
भवाम्बोधि-पोतं शरण्यं व्रजामः ।

अभ्यासः

(क) ऊपर दिये पद्यों के आधार पर ईश्वर की स्तुति अपने शब्दों में लिखो ।

(ख) इनके अर्थ लिखो—

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरण्यम् ।
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ।
भवाम्बोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ।

(ग) १—नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय ।

नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय।
पतिं पतीनां परमं परस्तात्।
इनमें रेखांकित पदों का परिचय दो।

२—इस पाठ में किस लकार की क्रियाओं का प्रयोग हुआ है?

३—नमस्ते, वयं त्वां स्मरामः, शरण्यं व्रजामः—इनमें रेखाङ्कित पदों में कौन-कौन विभक्ति क्यों है?

सज्जन-प्रशंसा

अहो किमपि चित्राणि चरित्राणि महात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्त्यपि ॥१॥

अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि वासयन्ति कर-द्वयम् ।
अहो सुमनसां प्रीतिर्वामदक्षिणयोः समा ॥२॥

गवादीनां पयोन्येद्युः सद्यो वा जायते दधि ।
क्षीरोदधेस्तु नाद्यापि महतां विकृतिः कुतः ॥३॥

विकृतिं नैव गच्छन्ति सङ्ग-दोषेण साधवः ।
अधिष्ठितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते ॥४॥

सद्भिस्तु लीलया प्रोक्तं शिला-लिखितमक्षरं ।
असद्भिः शपथेनापि जले लिखितमक्षरम् ॥५॥

यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा गिरः ।
चित्ते वाचि क्रियायां च साधूनामेकरूपता ॥६॥
गङ्गा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा ।
पापं तापं च दैन्यं च घ्नन्ति सन्तो महाशयाः ॥७॥
नागुणी गुणिनं वेत्ति गुणी गुणिषु मत्सरी ।
गुणी च गुणरागी च विरलः सरलो जनः ॥८॥

धवलयति समग्रं चन्द्रमा जीव-लोकम्
कमपि निज-कलङ्कं नात्मसंस्थं प्रमार्ष्टि ।

भवति विदितमेतत् प्रायशः सज्जनानाम्,
परहितनिरतानामादरो नात्म-कार्ये ॥९॥

उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे,
प्रचलति यदि मेरुः, शीततां याति वह्निः ।
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायाम्,
न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम् ॥१०॥

अभ्यासः

(क) इनके भावार्थ बताओ ।

१—अहो किमपि······तद्द्वारेण नमन्त्यपि ।

२—अञ्जलिस्थानि······वाम-दक्षिणयोः समा ॥

३—परहितनिरतानामादरो नात्म-कार्ये ॥

(ख) १—धवलयति······नात्म-कार्ये ॥ ६ ॥

२—उदयति यदि······सज्जनानाम् ॥ १० ॥

इन दो पद्यों को गद्य में उल्था करो।

(ग) १—इनमें रिक्त स्थानों को भरकर वाक्य पूर्ण करो—

गवादीनां पयः—जायते।

साधवः सङ्ग-दोषेण—विकृतिं नैव—।

यदि पद्म—विकसति।

२—वासयन्ति, सद्भिः, अन्येद्युः, विषायते—ये किस प्रकार के रूप हैं?

३—पयोऽन्येद्युः, क्षीरोदधेस्तु, पुनरुक्तम्—इनमें सन्धि-च्छेद करो।

विद्या-महत्त्वम्

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्मं ततः सुखम् ॥१॥
विद्या शस्त्रस्य शास्त्रस्य द्वे विद्ये प्रतिपत्तये ।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाद्रियते सदा ॥२॥
हर्तुर्न गोचरं याति दत्ता भवति विस्तृता ।
कल्पान्तेऽपि न या नश्येत्किमन्यद् विद्यया समम्॥३॥
अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति ।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात् ॥४॥
सद्विद्या यदि का चिन्ता वराकोदर-पूरणे ।
शुकोऽशनमवाप्नोति राम-रामेति च ब्रुवन् ॥५॥

वसुमती-पतिना नु सरस्वती,
बलवता रिपुणापि न नीयते ।
सम-विभागहरैर्न विभज्यते,
विविध-देव-गणैरपि सेव्यते ॥६॥

न चौर-हार्यं न च राज-हार्यम्,
न भ्रातृ-भाज्यं न च भारकारि ।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं,
विद्या-धनं सर्व-धन-प्रधानम् ॥७॥

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं,
प्रच्छन्न-गुप्तं धनम् ।
विद्या भोगकरी यशः-सुखकरी,
विद्या गुरूणां गुरुः ।
विद्या बन्धु-जनो विदेश-गमने,
विद्या परं दैवतम्
विद्या राजसु पूज्यते न तु धनम्,
विद्या-विहीनः पशुः ॥८॥

अभ्यासः

(क) १—विद्या के गुण बताओ।
२—कैसी विद्या का सर्वत्र आदर होता है ?

३—विद्या-कोष और धन-कोष की तुलना करो।

४—(क) विद्या-धनं सर्व-धन-प्रधानम्।

(ख) व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमाप्नोति सञ्चयात्।

इन विचारों को युक्तियों से सिद्ध करो।

(ख) इनका संस्कृत में अनुवाद करो—

विद्या को चोर नहीं चुराता।

देने से बढ़ती है।

विदेश में विद्या बन्धु है।

(ग) इनके वाच्य बदलो—

सम-विभागहरैः न विभज्यते।

बलवता रिपुणापि न नीयते।

विद्या ददाति विनयम्।

मूषिक-चातुर्यम्—१

विनोद-सुख-लाभाय कथामाख्यामि ते शृणु।
विदिशा-नगरी-बाह्ये न्यग्रोधोऽभूत् पुरा महान् ॥१॥
चत्वारः प्राणिनस्तत्र वसन्तिस्म महातरौ।
नकुलोलूक-मार्जार-मूषिकाः पृथगालयाः ॥२॥
भिन्ने भिन्ने बिले मूले आस्तां नकुल-मूषिकौ।
मार्जारो मध्य-भागस्थे तरोर्महति कोटरे ॥३॥
उलूकस्तु शिरोभागेऽनन्य-लभ्ये लतालये।
मूषिकस्तु त्रिभिर्वध्यो मर्जारेण त्रयोऽपरे ॥४॥
अन्नाय मार्जार-भयान् मूषिको नकुलस्तथा।
स्वभावेनाप्युलूकश्च परिभ्रेमुर्निशि त्रयः ॥५॥

मार्जारश्च दिवारात्रौ निर्भयः प्रभ्रमत्यसौ ।
तत्रासन्ने यवक्षेत्रे सदा मूषिक-लिप्सया ॥६॥
जग्मुरन्येऽपि युक्त्या च सुकालेऽन्नाभिवाञ्छया ।
एकदा लुब्धकस्तत्र चाण्डालः कश्चिदाययौ ॥७॥
स मार्जार-पद-श्रेणीं दृष्ट्वा तत्क्षेत्र-गामिनीम् ।
तद्वधायाभितः क्षेत्रं पाशान् दत्त्वा ततो ययौ ॥८॥
तत्र रात्रौ च मार्जारः स मूषिक-जिघांसया ।
एत्य प्रविष्टस्तत्पाशैः क्षेत्रे तस्मिन्नबध्यत ॥९॥
मूषिकोऽपि ततोऽन्नार्थी स तत्र निभृतागतः ।
बद्धं तं वीक्ष्य मार्जारं जहर्ष च ननर्त च ॥१०॥
यावद्विशति तत्क्षेत्रं दूरादेकेन वर्त्मना ।
ततस्तौ तावदायातावुलूक-नकुलावपि ॥११॥
दृष्ट-मार्जार-बन्धौ च मूषिकं लब्धुमैच्छताम् ।
मूषिकोऽपि च तद् दृष्ट्वा दूराद् विग्नो व्यचिन्तयत्॥१२॥

अभ्यासः

(क) इनका अनुवाद संस्कृत में करो—

बिल्ला तीनों को मार सकता था ।
चूहे को तीनों मार सकते थे ।
चूहा देखकर और व्याकुल होकर सोचने लगा ।

(क) १—इनमें सन्धिच्छेद करो—

न्यग्रोधोऽभूत् पुरा महान् ।

उलूकस्तु 'शिरोभागेऽनन्य-लभ्ये-लतालये ।

क्षेत्रे तस्मिन्नबध्यत ।

२—महान्, रात्रौ, तस्मिन्, वर्त्मनि—

इनके शब्द, विभक्ति और वचन बताकर रात्रौ और वर्त्मनि का प्रयोग अपने वाक्यों में करो ।

अभितः क्षेत्रम् । यहाँ 'क्षेत्रम्' में द्वितीया क्यों हुई है ?

(ग) १—वट पर कौन कौन रहते थे ?

२—विडाल कहाँ रहता था ?

३—विडाल क्या चाहता था ?

४—शिकारी ने खेत में जाल क्यों लगाया ?

५—जाल में कौन फँस गया ?

मूषिक-चातुर्यम्—२

'नकुलोलूक-भयदं मार्जारं संश्रये यदि ।
वद्धोऽप्येक-प्रहारेण शत्रुर्मामिष मारयेत् ॥१३॥
मार्जार-दूरगं हन्यादुलूको नकुलश्च माम् ।
तच्छत्रु-संकट-गतः क्व गच्छामि करोमि किम् ॥१४॥
हन्त ! मार्जारमेवेह श्रयाम्यापद्गतो ह्ययम् ।
आत्म-त्राणाय मां रक्षेत् पाशच्छेदोपयोगिनम्' ॥१५॥
इत्यालोक्य शनैर्गत्वा मार्जारं मूषिकोऽब्रवीत् ।
वद्धे त्वय्यतिदुःखं मे तत्ते पाशं छिनद्म्यहम् ॥१६॥
ऋजूनां जायते स्नेहः सहवासाद् रिपुष्वपि ।
किन्तु मे नास्ति विश्वासस्तव चित्तमजानतः ॥१७॥

तच्छ्रुत्वोवाच मार्जारो भद्र ! विश्वस्यतां त्वया ।
अद्यप्रभृति मे मित्रं भवान् प्राण-प्रदायकः ॥१८॥
इति श्रुत्वैव मार्जारस्तस्योत्संगं स शिश्रिये ।
तद् दृष्ट्वा नकुलोलूकौ निराशौ ययतुस्तदा ॥१९॥
ततो जगाद मार्जारो मूषिकं पाश-पीडितः ।
'गतप्राया निशा मित्र, तत् पाशाँश्छिन्धि मे द्रुतम्'॥२०॥
मूषिकोऽपि शनैश्छिन्दन् लुब्धकागमनोन्मुखः ।
मृषा कटकटायद्भिर्दशनैरकरोच्चिरम् ॥२१॥
क्षणाद्रात्रौ प्रभातायां लुब्धके निकटागते ।
मार्जारेऽर्थ्यमाने द्राक् पाशांश्चिच्छेद मूषिकः ॥२२॥
छिन्न-पाशेऽथ मार्जारे लुब्धक-त्रास-विद्रुते ।
मूषिको मृत्यु-मुक्तः सन् पलाय्य प्राविशद् बिलम् ॥२३॥
नाश्वसत् पुनराहूतो मार्जारेण जगाद च ।
'काल-युक्त्या ह्यरिर्मित्रं जायते न च सर्वदा' ॥२४॥

अभ्यासः

(क) इनमें रिक्त स्थानों को भरो—

क्व गच्छामि करोमि—।

ऋजूनां सहवासात्—अपि—जायते ।

द्राक्—चिच्छेद मूषिकः ।

(ख) इनमें सन्धि करो—

तत्ते पाशं छिनद्मि अहम्।

पाशान् छिन्धि मे द्रुतम्।

दशनैः अकरोत् चिरम्।

इनमें रेखाङ्कित पदों की विभक्तियाँ लिखो।

(ख) इन समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बताओ—

प्राण-दायकः, पाशपीडितः, मृत्यु-मुक्तः।

(ग) इनका प्रयोग अपने वाक्यों में करो—

अद्यप्रभृति, मृषा, द्राक्।

(घ) इनका अनुवाद संस्कृत में करो—

१—बिल्ले को जाल में देखकर चूहे ने क्या सोचा ?
२—किस विचार से वह बिल्ले के पास गया ?
३—चूहे ने बिल्ले से क्या कहा ?
४—बिल्ले ने क्या उत्तर दिया ?
५—चूहे ने बिल्ले का जाल कब काटा ?
६—इस कथा का आदर्श बताओ।

रामस्य सीतोपदेशः

अतीव विलपन्तीं तां प्रोवाच रघुनन्दनः—
'सीते ! तत्रभवांस्तातः प्रव्राजयति मां वनम् ॥१॥
चतुर्दश हि वर्षाणि वस्तव्यं दण्डके मया।
दित्रा मे भरतश्चापि यौवराज्ये नियोजितः ॥२॥
सोऽहं त्वामागतो द्रष्टुं प्रस्थितो विजनं वनन्।
भरतस्य समीपे ते नाहं कत्थ्यः कदाचन ॥३॥
तस्मै दत्तं नृपतिना यौवराज्नं सनातनम्।
स प्रसाद्यस्त्यया सीते ! नृपतिश्च विशेषतः ॥४॥
अहञ्चापि प्रतिज्ञां तां पितुः समनुपालयन्।
वगमद्यैव यास्यामि स्थिरा भव मनस्विनि ! ॥५॥

याते च मयि कल्याणि ! वनं मुनि-निषेवितम् ।
व्रतोपवासपरया भतिव्यं त्वयानधे ! ॥६॥
कल्यमुत्थाय देवानां पूजां कृत्वा यथाविधि ।
वन्दितव्यो दशरथः पिता मम जनेश्वरः ॥७॥
माता च मम कौशल्या वृद्धा सन्तापकर्षिता ।
धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वत्तः सम्मानमर्हति ॥८॥
वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः ।
स्नेह-प्रणय-संभोगैः समा हि मम मातरः ॥९॥
भ्रातृ-पुत्र-समौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः ।
त्वया भरत-शत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम ॥१०॥
विप्रियं च न कर्तव्यं भरतस्य कदाचन ।
स हि राजा प्रभुश्चैव देशस्य च कुलस्य च ॥११॥
आराधिता हि शीलेन प्रयत्नैश्चोपसोविताः ।
राजानः संप्रसीदन्ति प्रकुप्यन्ति विपर्यये ॥१२॥
औरसानपि पुत्रान् हि त्यजन्त्यहितकारिणः ।
समर्थान् संप्रगृह्णन्ति जनानपि नराधिपाः ॥१३॥
सा त्वं वसेह कल्याणि ! राज्ञः समनुवर्तिनी ।
भरतस्य रता धर्मे सत्य–व्रत–परायणा' ॥१४॥

अभ्यासः

(क) इन वाक्यों को पूरा करो—

रामः सीतां—त्वया—न— ।
अहम् अद्यैव—गन्तुम्— ।
भरतस्य कदाचन—न— ।

(ख) १—इन पदों का प्रयोग अपने वाक्यों में करो—

तत्रभवान्, यास्यामि, त्वत्तः ।

२—इस पाठ में से 'विसर्ग को श्' की सन्धि के दो उदाहरण चुनो ।

(ग) १—राम सीता को बन में क्यों नहीं ले जाना चाहता था ?

२—सीता को उसने क्या-क्या करने को उपदेश दिया ?

३—भरतस्य समीपे ते नाहं कत्थ्यः कदाचन । इसका क्या अभिप्राय है ?

४—राजा के प्रति प्रजा का क्या कर्तव्य है ?

सीतायाः प्रत्युत्तरं रामम्प्रति

एवमुक्ता तु वैदेही प्रियार्हा प्रिय-वादिनी ।
प्रणयादेव संक्रुद्धा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥१॥
'आर्यपुत्र ! पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्वसा ।
स्वानि कर्माणि भुञ्जानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते ॥२॥
भर्तुर्भाग्यं तु भार्यैका प्राप्नोति पुरुषर्षभ !
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि ॥३॥
न पिता नात्मजो नात्मा न भ्राता न सखी-जनः ।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिस्सदा ॥४॥
यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुश-कण्टकान् ॥५॥

अहं दुर्गं गमिष्यामि वनं पुरुष-वर्जितम् ।
नाना-मृग-गणाकीर्णं शार्दूल-गण-सेविनम् ॥६॥
सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः ।
अचिन्तयन्ती त्रीन् लोकान् चिन्तयन्ती पतिव्रतम् ॥७॥
शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी ।
सह रंस्ये त्वया वीर ! वनेषु मधु-गन्धिषु ॥८॥
त्वं हि कर्तुं वने शक्तो राम संपरिपालनम् ।
अन्यस्यापि जनस्येह किं पुनर्मम मानद ! ॥९॥
साहं त्वया गमिष्यामि वनमद्य न संशयः ।
नाहं शक्या महाभाग ! निवर्तयितुमुद्यता ॥१०॥
फल-मूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः ।
न ते दुःखं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सह ॥११॥
इच्छामि सरितः शैलान् पल्वलानि सरांसि च ।
द्रष्टुं सर्वत्र निर्भीता त्वया नाथेन धीमता ॥१२॥
हंस-कारण्डवाकीर्णाः पद्मिनीः साधु-पुष्पिताः ।
इच्छेयं सुखिनी द्रष्टुं त्वया वीरेण सङ्गता ॥१३॥
स्वर्गेऽपि च विना वासो भविता यदि राघव ! ।
त्वया मम नरव्याघ्र ! नाहं तदपि रोचये' ॥१४॥

अभ्यासः

(क) इनका अनुवाद संस्कृत में करो—

यहाँ और वहाँ पति ही स्त्री का आश्रय है।
मैं लौटने को तैयार नहीं।
मैं तुम्हारे बिना स्वर्ग में रहना भी नहीं चाहती।

(ख) १—इनमें सन्धिच्छेद करो—
भर्तुर्भाग्यं तु भार्यैका।
अन्यस्यापि जनस्येह।
नाहं तदपि रोचये।

२—ये रूप किस शब्द और विभक्ति से बने हैं—
कर्माणि, भर्तारम्, त्रीन्, सरितः, पद्मिनीः।

(ग) १—सीता ने राम को जो उत्तर दिया उसका संक्षिप्त वर्णन अपने शब्दों में करो।

२—स्त्री के लिए पति का स्थान सर्वोत्तम क्यों है ?

३—मृद्नन्ती कुशकण्टकान्। इसका क्या भाव है ?

४—वन की शोभा और आनन्द-प्राप्ति का वर्णन करो।

श्रीकृष्णस्यार्जुनोपदेशः

(श्री भगवद्गीतायाम्)

क्लैव्यं मास्म गमः पार्थ ! नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदय-दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ! ॥१॥

कुल-क्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥२॥

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कल्याणं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तर-प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥३॥

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतः नायं हन्ति न हन्यते ॥४॥

न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥५॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य—
न्यानि संयाति नवानि देही ॥६॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥७॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥८॥
स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धात् श्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते ॥९॥
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
न कर्म-फल-हेतुर्भूः मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥१०॥
विहाय कामान् यः सर्वान् पुमाँश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥११॥
यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥१२॥

विद्या-विनय-सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥१३॥

ईश्वरः सर्व-भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥१४॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म-विभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥१५॥

अभ्यासः

(क) न हन्यते हन्यमाने—।
जातस्य हि—मृत्युः ।
कुलक्षये—कुलधर्माः सनातनाः ।
नैनं छिन्दन्ति—।
इनमें रिक्त स्थानों को भरो ।

(ख) इनमें सन्धिच्छेद करो—
नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
अधर्मोऽभिभवत्युत ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापः ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे ।
कर्मण्येवाधिकारस्ते ।
विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ।

२—इन समस्त पदों का विग्रह करो और समासों के नाम बताओ—कुल-क्षये, देहान्तर-प्राप्तिः, कर्म-फल-हेतुः, विद्या-विनय-सम्पन्ने ।

३—शोषयति, क्लेदयन्ति—ये कैसी क्रियायें हैं ?

(ग) १—श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीतोपदेश कब किया था ?

२—इस उपदेश में भगवान् ने शरीर के विषय में क्या कहा ?

३—मनुष्य-जन्म बदलना और वस्त्र बदलना एक-सा किस तरह है ?

४—निष्काम कर्म का क्या आशय है ?

५—चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म-विभागशः ।
इसका क्या आशय है ?

विदुरनीतिः

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते ।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढ-चेता नराधमः ॥१॥
परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा ।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ॥२॥
अशिष्यं शास्ति यो राजन्! यश्च शिष्यं न शास्ति च ।
कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढ-चेतसम् ॥३॥
एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता ।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद्राष्ट्रं सराजकम् ॥४॥
एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥५॥

शान्तिः खड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः ।
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ॥६॥
द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिल्लोके विरोचते ।
अब्रुवन् परुषं किञ्चित् असतोऽनर्चयँस्तथा ॥७॥
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥८॥
पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्या प्रयत्नतः ।
पिता माताग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ ! ॥६॥
षडिमान् पुरुषो जह्याद् भिन्नां नावमिवार्णवे ।
अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम् ॥१०॥
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम् ।
ग्राम-कामं च गोपालं वन-कामं च नापितम् ॥११॥
द्वाविमौ पुरुषौ राजन् ! स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान्॥१२॥

अभ्यासः

(क) परं क्षिपति······मूढतमो नरः ॥
षडिमान्······मृत्विजम् ॥
द्वाविमौ······प्रदानवान् ॥
(ख) इन पद्यों का अन्वय करो—
एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता ।

कुर्वन्नस्मिँल्लोके विरोचते ।

असतोऽनर्चयँस्तथा ।

२--कदर्यं भजते यश्च ।

किं करिष्यति दुर्जनः ।

इनके वाच्य बदलो ।

(ग) १--विना बुलाये जानेवाले की क्या दशा होती है ?

२--क्षमा में क्या गुण है ?

३--किन पाँचों का सत्कार करना चाहिए ?

४--किन छः मनुष्यों का परित्याग करना चाहिए ?

विविधानि नीति-पद्यानि

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥१॥
नक्षत्र-भूषणं चन्द्रो नारीणां भूषणं पतिः ।
पृथिवी-भूषणं राजा विद्या सर्वस्य भूषणम् ॥२॥
लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते च षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥३॥
मातृवत् पर-दारेषु पर-द्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत् सर्व-भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥४॥
विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम् ।
नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥५॥

जानीयात् प्रेषणे भृत्यान् बान्धवान् व्यसनागमे ।
मित्रं चापत्ति-काले च भार्यां च विभव-क्षये ।।६।।

उपकार-गृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत् ।
पाद-लग्नं करस्थेन कण्टकेनैव कण्टकम् ।।७।।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ? ।।८।।

यस्मिन् देशे न सम्मानो न प्रीतिर्न च बान्धवाः ।
न च विद्यागमः कश्चित् न तत्र दिवसं वसेत् ।।९।।

ऋण-शेषश्चाग्नि-शेषश्च शत्रु-शेषस्तथैव च ।
पुनः पुनः प्रवर्तन्ते तस्मात् शेषं न कारयेत् ।।१०।।

कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम् ।
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम्।।११।।

पुस्तक-स्था तु या विद्या पर-हस्त-गतं धनम् ।
कार्य-काले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम्।।१२।।

सेवितव्यो महावृक्षः फलच्छाया-समन्वितः ।
यदि दैवात् फलं नास्ति छाया केन निवार्यते ।।१३।।

अभ्यासः

(क) यस्मिन् देशे न सम्मानः तत्र किं कुर्यात् ?
पुत्रं कदा मित्रवदाचरेत्?
भार्यां कदा जानीयात् ?

(ख) इन क्रियाओं के वाच्य बदलकर इन वाक्यों को फिर से लिखो।

छाया केन निवार्यते ?

विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ?

शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत् ?

(ग) १—विद्वान् राजा से उत्तम क्यों है ?

२—किस-किस अवसर पर किस-किस की परीक्षा करनी चाहिए ?

३—कण्टकेनैव कण्टकम्।

इसका भाव बताओ।

४—मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः?

यदि दैवात् फलं नास्ति छाया केन निवार्यते ?

इनका आशय क्या है ?

सुभाषितानि

अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ।।१।।

अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किं नाम पौरुषम् ।।२।।

इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः ।।३।।

उदार-चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।४।।

गुणाः पूजा-स्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ।।५।।

दर्दुरा यत्र वक्तारः तत्र मौनं हि शोभनम् ।।६।।

न काचस्य कृते जातु युक्ता मुक्ता-मणेः क्षतिः ।।७।।

न कूप-खननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे ।।८।।

निस्सारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान् ।।९।।

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।१०।।

पर-सदन-निविष्टः को लघुत्वं न याति ॥११॥

यदेव रोचते यस्मै भवेत्तत्तस्य सुन्दरम् ॥१२॥

यो यद् वपति बीजं हि लभते सोऽपि तत्फलम् ॥१३॥

सम्पूर्ण-कुम्भो न करोति शब्दम् ॥१४॥

महान् महत्येव करोति विक्रमम् ॥१५॥

अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः ॥१६॥

हिताहितं वीक्ष्य निकाममाचरेत् ॥१७॥

निरस्त-पादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ॥१८॥

अभ्यासः

(क) अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति।
न कूप-खननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे।
निरस्त-पादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।
इनके आशय बताओ।

(ख) दर्दुरा यत्र—तत्र—हि शोभनम्।
न्याय्यात्—प्रविचलन्ति—न धीराः।
सम्पूर्ण-कुम्भो न—शब्दम्।
इनमें रिक्त स्थानों को भरो।

(ग) न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति।
एरण्डोऽपि द्रुमायते।
प्रायेणाडम्बरो महान्।
लिङ्गं न च वयः।
रेखाङ्कितों के पद परिचय दो।

परिशिष्ट

संस्कृत-भाषा के मुख्य और विशेष अंग

किसी भी भाषा का कलेवर शब्दों से बनता है, और शब्द अक्षरों से बनते हैं। अक्षर वह अखंड ध्वनि है जिसका विभाजन आगे नहीं हो सकता।

संस्कृत-भाषा के ४६ अक्षर हैं—१३ स्वर (ह्रस्व और दीर्घ), ३३ व्यंजन तथा अनुस्वार और विसर्ग।

इन्हीं अक्षरों के जोड़-तोड़ से शब्दों की उत्पत्ति होती है। शब्दों की संख्या अनन्त है क्योंकि भाषाओं, विशेषतः प्रचलित भाषाओं, से नये-नये शब्दों का निर्माण नित्य होता रहता है। संस्कृत की धातुओं की संख्या चाहे परिमित हो, परन्तु इनके साथ लकार-विभक्तियों, कृदन्त और तद्धित-प्रत्ययों के योग से अनन्त नये-से-नये शब्दों की रचना हो सकती है। संस्कृत-भाषा की यही विशेषता अनुपम है।

संस्कृत-भाषा के शब्दों की रूपावली बहुत व्यापक है। इसके प्रत्येक शब्द के अनेक रूप बनते हैं। संज्ञाओं, सर्वनामों तथा विशेषणों के अन्यान्य सुप्-विभक्तियों में और धातुओं के अन्यान्य तिङ्-विभक्तियों में अनेक रूप बनते हैं। यह बात और भाषाओं में नहीं है और यदि है भी तो इतनी सीमा तक नहीं है। यह इसकी दूसरी विशेषता है।

संस्कृत में सन्धियों का प्रयोग बहुत अधिक होता है। दूसरी भाषाओं में अन्यान्य अक्षरों की सन्धि नहीं होती और यदि होती है तो उन्हीं भाषाओं के शब्दों में होती है जो संस्कृत-जात हैं। यह इसकी तीसरी विशेषता है।

समस्त शब्दों का प्रयोग संस्कृत की चौथी विशेषता है। समास-

प्रकरण एक बहुत जटिल विषय है। जहाँ दूसरी भाषाओं के समस्त शब्द दो-दो, तीन-तीन शब्दों तक ही सीमित रहते हैं, वहाँ संस्कृत में समस्त शब्द बीस-बीस, तीस-तीस अथवा इनसे भी अधिक शब्दों के मेल से बने बहुत मिलते हैं।

धातुओं से कृत्-प्रत्यय लगकर बने हुए कृदन्त शब्द और संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण आदि से तद्धित-प्रत्यय लगकर बने हुए अनन्त तद्धितान्त शब्द संस्कृत के अतिरिक्त और भाषाओं में बहुत कम मिलते हैं।

कई ऐसे पद भी हैं जिनका रूप स्थिर रहता है, विभक्ति-प्रयोग आदि के कारण उनके कई भिन्न-भिन्न रूप नहीं होते। इन्हें अव्यय कहते हैं। अव्ययों में कुछ ऐसे-ऐसे शब्द होते हैं जिनका स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता, उन्हें उपसर्ग कहते हैं। उपसर्गों का प्रयोग स्वतन्त्र नहीं होता। ये किसी दूसरे शब्द के पूर्व जुड़कर ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे—अनुभव, प्रभव, संभव, पराभव; विचार, प्रचार, संचार, दुराचार। इनमें भव और चार के पूर्व अन्यान्य उपसर्ग जुड़े हुए हैं।

उपसर्गों से अन्य अव्ययों का प्रयोग स्वतन्त्र होता है। जैसे—च, वा, पुनः, सदा आदि। इनमें कुछ अव्यय ऐसे हैं जिनके प्रयोग से उस शब्द में विशेष विभक्ति आती है जिसका उनसे सम्बन्ध है। इस विभक्ति को उपपद विभक्ति कहते हैं। जैसे—सह, अनु, धिक्।

१—रूप-रचना

इस परिमित स्थान में रूप-रचना पर कुछ नहीं कहा जा सकता। इसके लिए किसी प्रमाणित व्याकरण पुस्तक का अनुशीलन करना होगा। संस्कृत में संज्ञा, सर्वनाम और विशेषणों की सात विभक्तियों में और धातुओं की दस लकारों में रूप-रचना होती है।

२—सन्धिः

सन्धि-ज्ञान संस्कृत-भाषा के ज्ञान के लिए अत्यावश्यक है। जहां पर शब्दों के अन्दर सन्धि आन्तरिक होती है वहां एक शब्द के अन्तिम वर्ण की दूसरे शब्द के आदिम वर्ण से सन्धि वाह्य होती है। प्रत्येक शब्द की वाह्य सन्धि को तोड़कर ही किसी वाक्य के अर्थ का ज्ञान हो सकता है। अधिक ध्यान देने की बात तो यह है कि दो अक्षरों की सन्धि से उनमें (कभी एक वर्ण में कभी दो में) कोई न कोई विकार हो जाता है। यही कारण है कि इस पुस्तक में सन्धि-ज्ञान पर विशेष बल दिया गया है।

पहले कुछ पाठों में वाह्य सन्धि का प्रयोग नहीं किया गया। उसके बाद के पाठों में सन्धि का क्रम से प्रयोग किया है। जहां जिस सन्धि का प्रथम प्रयोग हुआ है उसके नीचे उसके सम्बन्ध का नियम दिया है।

जहां आन्तरिक सन्धि का होना आवश्यक है वहां वाह्य सन्धि करना आवश्यक नहीं है, परन्तु इसका प्रयोग सब ग्रन्थों में होता है। समस्त पदों में वाह्य सन्धि भी आवश्यक है। जैसे—'नरोत्तम' यह समस्त पद है। इसे हम सदा नरोत्तम ही कहेंगे या लिखेंगे, नर-उत्तम नहीं कहेंगे। परन्तु 'नरोत्तमो गतः।' को हम 'नरोत्तमः गतः।' भी कह सकते हैं।

शब्दों के निर्माण में आन्तरिक सन्धि होती है। यह सन्धि-प्रयोग अनिवार्य है। जैसे--गो + ओस्–इसे पूर्ण रूप देने में गव् + ओस् = गवोः अवश्य कहना होगा।

सन्धि के विषय में कहा गया है—

संहितैक-पदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥

संहिता (सन्धि) एक पद के अन्दर, उपसर्ग और धातु में और

समास में आवश्यक है, परन्तु वाक्य के अन्यान्य पदों में इसका करना वक्ता की इच्छा पर निर्भर है।

सन्धि तीन प्रकार की है—

स्वर-सन्धि, हल्-सन्धि, विसर्ग-सन्धि।

१—स्वर के स्वर से मेल को स्वर-सन्धि,
२—हल् के स्वर वा हल् से मेल को हल्-सन्धि,
३—विसर्ग के स्वर वा हल् से मेल को विसर्ग-सन्धि कहते हैं।

१—स्वर-सन्धिः

स्वर-सन्धि के पांच भेद हैं—दीर्घ, यण्, गुण, वृद्धि, अयादि।

(क) दो समान-रूप अ, इ, उ, ऋ (ह्रस्व वा दीर्घ) के मेल से दीर्घ-सन्धि होती है। जैसे—दया + अर्णवः = दयार्णवः, राम + आज्ञा = रामाज्ञा, श्री + इच्छा = श्रीच्छा, भानु + उदयः = भानूदयः, पितृ + ऋणम् = पितृणम्।

(ख) इ, उ, ऋ, (ह्रस्व वा दीर्घ) वा लृ के परे यदि कोई असमान स्वर हो तो इ को य्, उ को व्, ऋ को र् और लृ को ल् होता है। जैसे—हरि + आज्ञा = हर्याज्ञा, प्रभु + ईच्छा = प्रभ्विच्छा, मातृ + आज्ञा = मात्राज्ञा, लृ + आकृतिः = लाकृतिः। (इस सन्धि को यण्-सन्धि कहते हैं।)

(ग) १—(ह्रस्व वा दीर्घ) अ के परे यदि इ (ह्रस्व वा दीर्घ) हो तो अ और इ के स्थान पर ए होता है। जैसे—राज + इन्द्रः = राजेन्द्रः, धन + ईशः = धनेशः।

२—अ (ह्रस्व वा दीर्घ) के परे यदि उ (ह्रस्व वा दीर्घ) हो तो अ और उ के स्थान पर ओ हो जाता है। जैसे—सूर्य + उदयः = सूर्योदयः, महा + उपकारः = महोपकारः।

३—अ (ह्रस्व वा दीर्घ) के परे यदि ऋ (ह्रस्व वा दीर्घ) हो तो अ और ऋ के स्थान पर अर् हो जाता है। जैसे—महा + ऋषिः = महर्षिः, तव + ऋणम् = तवर्णम्।

४—अ (ह्रस्व वा दीर्घ) के परे यदि ऌ हो तो अ और ऌ के स्थान पर अल् होता है। जैसे—तव + ऌकारः = तवल्कारः। इस सन्धि का प्रयोग बहुत कम होता है। (इस सन्धि को गुण-सन्धि कहते हैं)।

(घ) १—अ (ह्रस्व वा दीर्घ) के परे यदि ए वा ऐ हो तो अ और ए या ऐ के स्थान पर ऐ होता है। जैसे—एक + एकम् = एकैकम्, मम + ऐश्वर्यम् = ममैश्वर्यम्।

२—अ (ह्रस्व वा दीर्घ) के परे यदि ओ वा औ हो तो अ और ओ या औ के स्थान पर औ हो जाता है। जैसे—तव + ओष्ठः = तवौष्ठः, चित्त + औदार्यम् = चित्तौदार्यम्। (इस सन्धि को वृद्धि-सन्धि कहते हैं।)

(ङ) ए के परे यदि कोई स्वर हो उसे अय्,
ओ के परे यदि कोई स्वर हो तो उसे अव्,
ऐ के परे यदि कोई स्वर हो तो उसे आय्,
औ के परे यदि कोई स्वर हो तो उसे आव् होता है।

जैसे—शे + अनम् = शयनम्, भो + अति = भवति, नै + अकः = नायकः, पौ + अकः = पावकः।

अपवादः—पदान्त ए वा ओ के परे यदि अ हो तो अ का पूर्वरूप हो जाता है—अर्थात् अ नहीं रहता। जैसे—हरे + अत्र = हरेऽत्र, देवो + अब्रवीत् = देवोऽब्रवीत्।

अ के स्थान पर 'ऽ' चिह्न कर देते हैं। इसे अवग्रह कहते हैं।

२—हल्-सन्धि

हल्-सन्धि के अनुसार कई विकार होते हैं। यहां पर केवल कुछ अत्युपयोगी ही दिये जाते हैं।

(क) पदान्त क्, ट्, त्, प् के परे यदि कोई स्वर हो या किसी वर्ग का तृतीय, चतुर्थ वर्ण या य्, र्, ल्, व्, ह् में से कोई वर्ण हो तो क् को ग्, ट् को ड्, त् को द् और प् को ब् (अपने वर्ग का तृतीय वर्ण) हो जाता है। जैसे— प्राक्+एव=प्रागेव, सम्राट्+गच्छति=सम्राड् गच्छति, दूरात्+आगच्छति=दूरादागच्छति, अप्+जः=अब्जः।

(ख) पदान्त क्, ट्, त्, प् के परे यदि कोई अनुनासिक वर्ण (ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) हो तो उसे अपने वर्ण का पाँचवाँ वर्ण (क् को ङ्, ट् को ण्, त् को न्, प् को म्) हो जाता है विकल्प से। जहाँ पाँचवाँ वर्ण नहीं होता वहाँ तीसरा होता है। जैसे—प्राक्–नमनम्=प्राङ्नमनम् —प्राग्नमनम्, सम्राट्+नमति=सम्राण्नमति—सम्राड्नमति, तत्+मम...तन्मम—तद्मम, अप्+मानः=अम्मानः—अब्मानः।

(ग) (१)—त् वा न् के परे ल हो तो त् और न् को ल् हो जाता है और न् के ल् से पूर्व स्वर पर ँ (चन्द्रबिन्दु) हो जाता है। जैसे— तत्–लाभः=तल्लाभः, महान्+लाभः=महाँल्लाभः।

(२)—त् से परे श् हो तो त् को च् और श् को छ् हो जाता है। जैसे– तत्+श्रुत्वा=तच्छ्रुत्वा।

(घ) किसी वर्ग के पहले, दूसरे, तीसरे वा चौथे वर्ण से परे यदि ह हो तो ह को पूर्व वर्ण के वर्ग का चौथा वर्ण विकल्प से और पूर्व वर्ण को उसी वर्ग का तीसरा वर्ण हो जाता है। जैसे—वाक्+हरिः= वाग्घरिः—वाग्हरिः, सम्राट्+हतः=सम्राड्ढतः–सम्राड्हतः, तत्+ हननम्=तद्धननम्—तद्हननम्, अप्+हरणम्=अब्भरणम्–अब्‌हरणम्।

(ङ) पदान्त न् से परे यदि च या छ् हो तो न् को अनुस्वार और श् यदि ट् या ठ् हो तो न् को अनुस्वार और ष् और यदि त् या थ् हो तो न् को अनुस्वार और स् हो जाता है। जैसे—कस्मिन्+चित्= कस्मिंश्चित, हसन्+चलति=हसंश्चलति, पाशान्+छिनत्ति=

पाशांश्छिनत्ति, हसन् + टीकते = हसंष्टीकते, पतन् + तरुः = पतंस्तरुः, क्षिपन् + थुत्कारम् = क्षिपंस्थुत्कारम्।

(च) तवर्ग या स् से पहले या परे चवर्ग या श् हो तो तवर्ग को क्रमशः चवर्ग और स् को श् हो जाता है। जैसे—सत् + चित् = सच्चित्, याच् + ना = याच्ञा, धावन् + शशः = धावंश्छशः, तान + जयति = ताञ्जयति।

(छ) न् से पूर्व कोई ह्रस्व स्वर हो और परे कोई स्वर हो तो न् को द्वित्व (दो न्) हो जाता है। जैसे—धावन् + अश्वः = धावन्नश्वः।

(ज) (१)—छ् से पूर्व ह्रस्व स्वर हो तो छ् से पूर्व च् (च्छ) जोड़ा जाता है। जैसे—वृक्ष + छाया = वृक्षच्छाया।

(२)—पदान्त दीर्घ स्वर से परे छ हो तो छ् से पहले च् विकल्प से जोड़ा जाता है। जैसे—लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीछाया-लक्ष्मीच्छाया।

(झ) (१)—पदान्त म् से परे य र ल व श ष स ह में से कोई वर्ण हो तो म् को नित्य अनुस्वार होता है। जैसे—रामम् + वदति = रामं वदति, जलम् + स्रवति = जलं स्रवति।

(२)—पदान्त म् से परे यदि कोई वर्गीय वर्ण हो तो म् को अनुस्वार या परले के वर्ण के वर्ग का पांचवां वर्ण हो जाता है। जैसे—किम् + करोति = किङ्करोति—किंकरोति। धनम् + ददाति = धनन्ददाति—धनं ददाति।

३—विसर्ग-सन्धिः

विसर्ग में प्रायः ये विकार होते हैं—

१—विसर्ग-लोप,

२—विसर्ग को उ,

३—विसर्ग को र्,

४—विसर्ग को स्, ष्, श्।

१—(क) विसर्ग के पूर्व यदि अ हो और परे अ-भिन्न कोई स्वर हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है। (विसर्ग का लोप होने पर फिर कोई सन्धि नहीं होती)। जैसे—रामः + उवाच = राम उवाच, अतः + एव = अतएव।

(ख) विसर्ग के पूर्व यदि आ हो और परे अ-भिन्न कोई स्वर, किसी वर्ग के दूसरे, तीसरे और चौथे वर्णों में से कोई वर्ण या य, र, ल, व, ह में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है। जैसे—देवाः + ऊचुः = देवा ऊचुः, जनाः + इच्छन्ति = जना इच्छन्ति, कन्याः + लज्जन्ते = कन्या लज्जन्ते।

(ग) सः और एषः के विसर्ग का लोप हो जाता है यदि परे अ-भिन्न कोई वर्ण हो। जैसे—सः + नृपतिः = स नृपतिः, सः + आह = स आह।

(घ) भोः के विसर्ग का लोप हो जाता है यदि परे कोई स्वर या वर्गों के तीसरे, चौथे, पांचवें वर्ण में से कोई वर्ण या य र ल व ह में से कोई वर्ण हो। भोः + राम = भो राम, भोः + उमापते = भो उमापते। विसर्ग का लोप होने पर फिर कोई सन्धि नहीं होती।

२—विसर्ग के पूर्व यदि अ हो और परे अ या वर्गों के तीसरे, चौथे, पाँचवें वर्णों में से कोई वर्ण या य र ल व ह में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग को उ हो जाता है। जैसे—देवः + अवदत् = देव उ अवदत् (उ और उसके पूर्ववर्ती अ को गुण ओ हो जाता है) देवो अवदत् (पदान्त स्वर से परे अ को पूर्वरूप हो जाता है) देवोऽवदत्। रामः + वदति = रामो वदति।

३—विसर्ग के पूर्व यदि कोई अ-आ-भिन्न स्वर हो और परे कोई स्वर, वर्गों के तीसरे, चौथे, पांचवें वर्णों में से कोई वर्ण या य र ल व ह में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग को र् हो जाता है। जैसे—हरिः + आह = हरिराह, अग्निः + ज्वलति = अग्निर्ज्वलति।

४—(क) विसर्ग के परे यदि च् वा छ् हो तो विसर्ग को श्,
विसर्ग के परे यदि ट् वा ठ् हो तो विसर्ग को ष्,
विसर्ग के परे यदि त् वा थ् हो तो विसर्ग को स् होता है।

जैसे—हरिः + चलति = हरिश्चलति, धावितः + छागः = धावितश्छागः, धनुः + टंकारः = धनुष्टंकारः। रामः + तरति = रामस्तरति, हरिः + तृषितः = हरिस्तृषितः।

(ख) विसर्ग के परे श् हो तो विसर्ग को विकल्प से श्,
विसर्ग के परे ष् हो तो विसर्ग को विकल्प से ष्,
विसर्ग के परे स् हो तो विसर्ग को विकल्प से स् हो जाता है।

जैसे—अनित्यः संसारः = अनित्यस्संसारः—अनित्यः संसारः।
दिवसः + षष्ठः = दिवसष्षष्ठः—दिवसः षष्ठः।
प्रथमः + सर्गः = प्रथमस्सर्गः—प्रथमः सर्गः।

समास

जब एक से अधिक पद परस्पर मिलकर एक-से बन जाय तो उसको समस्त पद कहते हैं।

समास उन्हीं पदों का होता है, जिनमें परस्पर संबध होता है। समास होने पर प्रत्येक पद के अन्त की विभक्ति का लोप हो जाता है और समस्त पद के अन्त में केवल उचित विभक्ति आती है। समास में प्राप्य सन्धि का होना अनिवार्य है।

समास के छः भेद होते हैं—

तत्पुरुष-समास, द्वन्द्व-समास, बहुव्रीहि-समास, कर्मधारय-समास, द्विगु-समास, अव्ययीभाव-समास।

१—तत्पुरुष-समास

जब पूर्व पद में प्रथमा-भिन्न कोई विभक्ति हो और उत्तर पद में कोई प्रथमान्त संज्ञा-शब्द हो तो उनमें जो समास होता है उसे तत्पुरुष-समास कहते हैं। तत्पुरुष-समास प्रायः दो पदों में होता है।

तत्पुरुष-समास के छै भेद हैं—

द्वितीया-तत्पुरुष तृतीया-तत्पुरुष
चतुर्थी-तत्पुरुष पंचमी-तत्पुरुष
षष्ठी-तत्पुरुष सप्तमी-तत्पुरुष

जैसे—गृहम्+गतः=गृहगतः, असिना+छिन्नः=असिच्छिन्नः
देवेभ्य.+बलिः=देवबलिः, धर्मात्+अपेतः=धर्मापेतः,
राज्ञः+पुरुषः=राजपुरुषः, वने+जातः=वनजातः,

नञ्-तत्पुरुष

नञ् (अव्यय 'नहीं') यदि किसी पद से समस्त हो तो उसे नञ्-तत्पुरुष कहते हैं।

किसी स्वर से पूर्व न को अन् और किसी व्यंजन से पूर्व न को अ हो जाता है। जैसे—न अश्वः=अनश्वः, न सत्=असत्।

२—द्वन्द्व-समास

यदि एक से अधिक प्रथमान्त पद 'च' से जुड़े हों तो उनके समास को द्वन्द्व समास कहते हैं।

समस्त पद यदि दो प्रथमान्त पदों से बना हो तो उसके अन्त में द्विवचन अन्यथा बहुवचन आता है। जैसे—रामः च कृष्णः च= रामकृष्णौ, रामः च भरतः च शत्रुघ्नः च=राम-भरत-शत्रुघ्नाः, गजाः च अश्वाः च=गजाश्वाः।

३—बहुव्रीहि समास

बहुव्रीहि-समास में पूर्व पद प्रायः विशेषण होता है और उत्तर पद विशेष्य।

इसके विग्रह में यत् सर्वनाम के प्रथमा से भिन्न किसी रूप के प्रयोग की आवश्यकता रहती है।

बहुव्रीहि समस्त पद विशेषण होता है।

जैसे—अर्जितं धनं येन, सः=अर्जितधनः, उपहृताः पशवः यस्मै, सः=उपहृतपशुः, निर्गतं जलं यस्मात्, सः=निर्गतजलः, मृतः पुत्रः यस्य, सः=मृतपुत्रः, विद्यमानं जलं यस्मिन्, तत्=विद्यमानजलम्।

४—कर्मधारय-समास

कर्मधारय-समास में पूर्व पद विशेषण और उत्तर पद विशेष्य (संज्ञा) होता है।

कर्मधारय समस्त पद संज्ञापद होता है (यही इसकी बहुव्रीहि से विशेषता है)। जैसे—कृष्णः सर्पः=कृष्णसर्पः, शीतं जलम्=शीतजलम्, महान् पुरुषः=महापुरुषः (समास में महान् को महा हो जाता है।), महादेवः, महादेवी।

५—द्विगु-समास

द्विगु-समास में पूर्व पद संख्यावाचक और उत्तर पद प्रथमान्त संज्ञापद होता है।

द्विगु समष्टि (समाहार) अर्थ में आता है। इसके अन्त में केवल नपुंसक-एकवचन ही आता है। कभी-कभी ई प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग भी आता है। जैसे—चतुर्णां युगानां समाहारः=चतुर्युगम्, नवानां रात्रीणां समाहारः=नवरात्रम्। त्रयाणां लोकानां समाहारः=त्रिलोकी, शतस्य अब्दानां समाहारः=शताब्दी।

६—अव्ययीभाव-समास

अव्ययीभाव-समास में पूर्व पद अव्यय होता है और समस्त पद भी अव्यय बन जाता है। जैसे—कृष्णस्य समीपम्=उपकृष्णम्, अहनि अहनि=प्रत्यहम्, मक्षिकाणाम् अभावः=निर्मक्षिकम्। (अव्ययीभाव के

विग्रह में किसी उपसर्ग या प्रत्यय के स्थान पर उसका अर्थ प्रकट करने वाला कोई शब्द और रखा जाता है ।)

कृदन्त

मुख्य कृत्-प्रत्यय क्त (त), क्तवत् (तवत्), क्त्वा (त्वा), तुम्, तव्य तथा अनीय हैं ।

क्त—गतः, हतः, पतितः, भूतः ।

क्तवत्—गतवान्, हतवान्, पतितवान् ।

क्त्वा—गत्वा, हत्वा, पतित्वा, भूत्वा ।

तुम—गन्तुम्, हन्तुम्, पतितुम्, भवितुम् ।

तव्य—गन्तव्यम्, हन्तव्यम्, पतितव्यम्, भवितव्यम् ।

अनीय—गमनीयम्, हननीयम्, पतनीयम्, भवनीयम् ।

इनमें से त्वा-अन्त और तुम्-अन्त के अतिरिक्त जो शेष कृदन्त हैं, उनकी रूपावली तीनों लिङ्गों में होती है । जैसे—

क्त—गतः (पु०), गता (स्त्री०), गतम् (नपुं०) ।

क्तवत्—गतवान् (पु०), गतवती (स्त्री०), गतवत् (नपुं०)।

क्त-अन्त, क्तवत्-अन्त, तव्य-अन्त और अनीय-अन्त पदों का प्रयोग क्रिया की तरह और विशेषण की तरह भी होता है ।

जैसे—रामः गृहं गतः (क्रिया); गतं रामम् आह्वाय । (वि०)

रामेण रावणः हतः (क्रि० कर्मवा०); हते रावणे सर्वे प्रासीदन् । (वि०)

गृहात् बालकः पतितवान् (क्रि०); गृहात् पतितवन्तं बालकं स नरः अरक्षत् । (वि०)

अद्यैव रावणः हन्तव्यः (हननीयः) (क्रि० कर्म-वा०); मया हन्तव्यं एतं नरं को रक्षितुम् क्षमः । (वि०)

क्त्वा—रावणं हत्वा रामः प्रतिनिवृत्तः ।

तुम्—रावणं हन्तुं रामः प्रतस्थे ।

तद्धित

तद्धित प्रत्ययों से अनेकों शब्द अनेकों अर्थों में बनते हैं। कई प्रत्ययों के लगाने पर शब्दों में कुछ परिवर्तन हो जाते हैं जिनमें पूर्व स्वर में वृद्धि विशेष है ।

अ—वसुदेवस्य अपत्यम् = वासुदेवः, रघोः अपत्यम् = राघवः, यादवः।
इ—दशरथस्य अपत्यं = दाशरथिः, मारुतिः ।
एय—गङ्गया अपत्यम् = गाङ्गेयः, कौन्तेयः ।
अ—प्रत्यय बहुत अर्थों में आता है । जैसेः—
सम्बन्ध—देवस्य अयम् = दैवः, नैशः ।
स्वामी—पृथिव्याः स्वामी = पार्थिवः, पांचालः ।
अध्ययन—व्याकरणम् अधीते = वैयाकरणः ।
भाव—कुमारस्य भावः = कौमारम्, शैशवम् ।
(अ से पूर्व शब्द के प्रथम स्वर में वृद्धि होती है)

इक—मासिकम्, साप्ताहिकम्, वार्षिकम्, दैनिकम्, नाविकः, नैयायिकः, नास्तिकः ।
ईन—ग्रामीणः, नवीनः, कुलीनः, प्राचीनः ।
ईय—भवदीयः, पाणिनीयः, स्वकीयः ।
तन—सनातनः, पुरातनः, नूतनः ।
ता—जनता, मृदुता, बन्धुता ।
त्व—मृदुत्वम्, पुरुषत्वम् ।
मय—हिरण्मयः, मृण्मयः ।
इत—पुष्पितः, फलितः, पण्डितः, मूर्छितः ।
इन्—दण्डिन्-दण्डी, अर्थी, सुखी ।
मत्—बुद्धिमत्-बुद्धिमान्, मतिमान ।
वत्—धनवत्-धनवान्, गुणवान् ।

कई अव्यय तद्धितों के योग से बनते हैं ।

तस (तः)—यतः, ततः, अतः ।

त्र—यत्र, कुत्र, अत्र ।

था—यथा, तथा ।

दा—यदा, कदा, तदा ।

अव्यय

अव्ययों में से कुछ अव्यय उपसर्ग होते हैं । वे किसी अन्य शब्द के आदि में ही प्रयुक्त होते हैं ।

उपसर्ग-भिन्न अव्ययों का प्रयोग स्वतन्त्र होता है । ये—अद्य, अपि, इति, एव, क्व, तथा, ननु, न, वा, मुहुः, यथा, यत्र, तत्र, तदा, तावत्, यदि, तर्हि, इदानीम्, भृशम्, खलु—आदि अनेक हैं ।

उपसर्ग

उपसर्ग किसी शब्द के आदि में ही प्रयुक्त होकर व्यवहृत होते हैं । ये स्वतन्त्र प्रयुक्त नहीं होते । जिन शब्दों के पूर्व में ये आते हैं उनके अर्थ में कुछ भेद हो जाता है ।

जैसे— कृ (कार) के पूर्व सम् लगने से संस्कार (सुधार), अप लगने से अपकार (बुराई), वि लगने से विकार (परिवर्तन), प्र लगने से प्रकार (भेद), आ लगने से आकार (शक्ल), बनते हैं। इनमें उपसर्ग के कारण एक ही 'कार' में अर्थ-भेद हो गया है ।

कुछ धातु और उपसर्ग

आप्—(पाना)—वि+आप् (व्याप्) फैलना, सम्+आप् (समाप्) अन्त होना, प्र+आप् (प्राप्) पहुँचना ।

ईक्ष (देखना)—अनु+ईक्ष् (अन्वीक्ष्) खोजना, अप+ईक्ष् (अपेक्ष्) आशा करना, परि+ईक्ष् (परीक्ष्)इम्तहान लेना, उप+ईक्ष् (उपेक्ष्) परवाह न करना ।

गम् (जाना),—अधिगम्—पाना, अवगम्—जानना, उपगम्—पहुँचना।

ग्रह् (पकड़ना)—अनुग्रह्—दया करना, प्रतिग्रह्—दान लेना, विग्रह्—लड़ना, संग्रह्—इकट्ठा करना।

ज्ञा (जानना)—अनुज्ञा—इजाजत देना, अभिज्ञा—पहचानना, अवज्ञा—तिरस्कार करना, प्रतिज्ञा—प्रण करना।

भू (होना)—अनुभू—अनुभव करना, परिभू—तिरस्कार करना, प्रभू—समर्थ होना, संभू—उत्पन्न होना।

हृ (हरना)—अनुहृ—नकल करना, आहृ—भोजन करना, लाना।

उद्हृ (उद्धृ)—निकालना, संहृ—मारना, प्रहृ—चोट करना, विहृ—घूमना।

इस प्रकार उपसर्गों के योग से अनेकों शब्दों की सृष्टि होती है।

कुछ अव्ययों के साथ अन्यान्य विभक्तियों का प्रयोग

अव्ययों में से कुछ ऐसे अव्यय हैं जिनके साथ किसी न किसी नियत विभक्ति का प्रयोग होता है।

विभक्ति दो प्रकार की है—कारक विभक्ति और उपपद विभक्ति। क्रिया के सम्बन्ध से जो विभक्ति आती है, उसे कारक विभक्ति कहते हैं और किसी पद (अव्यय अथवा किसी और पद) के प्रयोग से जो विभक्ति होती है उसे उपपद विभक्ति कहते हैं।

इस प्रकार के अव्यय बहुत हैं। उनमें से कुछ नीचे दिये गये हैं—

इनके साथ द्वितीया का प्रयोग होता है—

उभयतः (दोनों ओर)—उभयतः कृष्णं गोपालास्तिष्ठन्ति।
सर्वतः (चारों ओर)—सर्वतः इमं प्रदेशं पर्वतः वर्तन्ते।
धिक (धिक्कार) धिक् दुष्टान तान् ये परान् क्लेशयन्ति।

इनके साथ तृतीया का प्रयोग होता है—

सह (साथ)--रामेण सह जानकी वनं गता ।

इसी अर्थ के साकम्, सार्धम्, समम् के साथ भी तृतीया आती है ।

किम् (क्या ! निष्प्रयोजन) किं तेन कुपुत्रेण यः पितरौ न सेवते ।

इसी अर्थ के प्रयोजनम् और अर्थः के साथ भी तृतीया आती है ।

अलम् (बस) के साथ तृतीया आती है । अलं बहुभिः प्रलापैः ।

कृतम् भी इसी अर्थ में आता है ।

इनके साथ चतुर्थी का प्रयोग होता है—

नमः (नमस्कार)—नमः शिवाय ।

स्वाहा (बलिदान)--अग्नये स्वाहा ।

अलम् (पर्याप्त)--अलं कृष्णः कंसाय ।

इनके साथ पंचमी प्रयुक्त होती है—

आरात् (दूर, पास)--आरात् ग्रामात् कूपः ।

प्रभृति (लेकर, आरंभ करके)--शैशवात् प्रभृति मया सुखं न प्राप्तम् ।

आरभ्य भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

वहिः (बाहिर) ग्रामाद् वहिः सुरम्यं देवायतनम् ।

परम् (बाद) अद्यदिनात् परं न मया अत्र एयेयम् ।

अनन्तरम् भी इसी अर्थ में आता है ।

क्लिष्ट-शब्दार्थाः

कृतघ्नः सर्पः—१

हेमन्ते—जाड़े के मौसम में, शीतकाल में
भुवि—पृथिवी पर
शैत्यस्य—शीत (ठंडक) की
म्रियमाणः—मरा जाता हुआ
करुणा—दया
विविधैः—अनेक प्रकार के
उपचारैः—दवा-दारू से
पोष्यमाणः—पाला-पोसा हुआ
क्रीडता—खेलते हुए (तृ० एक०)
दष्टः—काटा
पञ्चत्वम्—मृत्यु को
आविष्टः—आक्रान्त, युक्त
आदाय—लाकर

कृतघ्नः सर्पः—२

प्रहरन्तम्—पीटते हुए
अध्वगेन—राही (यात्री) से
वराकम्—दीन
प्रतीयते—प्रतीत (मालूम) होता है
प्रत्यवदत्—उत्तर दिया
प्रतिकारे—बदले में
पान्थः—यात्री
दशनम्—काटना
दुरतिक्रमः—लांघा (बदला) नहीं जाता
अनुसृत्य—मान कर

ऐक्ये बलम्—१

चत्वारः—चार
उपाविशन्—बैठते थे
बलिष्ठाः—अतिबलवान्
पीवराः—मोटे
आर्द्रम्—गीला
मुखम् आर्द्रम् अवर्तत—मुँह में पानी भर आता था
सुललितम्—अतिस्वादु
आक्रमितुं प्रवृत्तः—आक्रमण (हमला) करने को उद्यत होता
निरवलम्बः—निराश्रय, निस्सहाय
प्रद्रुत्य—भागकर
निवसतः—रहते हुए को (ष० एक०)

ऐक्ये बलम्—२

समुपविष्टम्—बैठे हुए
उपसृत्य—पास जाकर
निमग्नः—डूबा हुआ
अलम्—बस, बंद करो
विषादेन—चिन्ता, कष्ट
दुष्करम्—कठिन
लीलया—आराम से
जम्बुकानाम्—गीदड़ों की
प्रख्यातम्—प्रसिद्ध
किङ्करेण—भृत्य, नौकर
अनायासेन—बिना कष्ट के
निष्पाद्यम्—किया जाने योग्य
प्रतिज्ञाय—प्रतिज्ञा कर

ऐक्ये बलम्—३

वृषभान्तिकम्—वृषभस्य (बैल के) अन्तिकम् (पास)
प्रतिवन्दे—प्रणाम (उत्तर में) करता हूँ
निश्शेषान्—शेषरहित, बिल्कुल नष्ट
अक्षमः—असमर्थ
विश्वासपात्रम्—विश्वास के योग्य
अनवरतम्—निरन्तर
अनावृष्टिवशात्—वर्षा न होने के कारण
विषादः—चिन्ता, दुःख
हरित्तृणानि—हरी घास
पक्व-फलाभरितः—पके फलों से भरे हुए

ऐक्ये बलम्—४

प्रत्ययम्—विश्वास
धीवर-निर्देशानुसारम्—धीवर के कहने के अनुकूल
प्रतिनिवृत्तम्—लौटा हुआ
जीवन-यात्रा—जीविका, गुज़ारा
दुष्करा—कठिन, दुःसाध्य
अभिलषितम्—इच्छा
दिनान्तरे—दूसरे दिन (अन्यत् दिनम्)
अलक्षितः—गुप्त, किसी से न देखा हुआ

गुणैः सौन्दर्यम्

अप्रतिमः—अद्वितीय (न विद्यते प्रतिमा यस्य, सः)
दुर्वचोभिः—बुरी बातों से
विषादितवान्—तंग किया करता था
शर-तुल्यानि—बाणों के समान
तूष्णीम्—चुपचाप
सविधे—पास
दर्पणे—आइने में
प्रतिच्छाया—प्रतिबिंब, अक्स
विषण्णा—दुःखित
जननी—माता
स्वाङ्के—अपनी गोद में
पुत्रौ—पुत्र और पुत्री (सम्बो०)
अपकर्तव्या—हटानी चाहिए
निन्दास्पदम्—निन्दा के योग्य

मौर्ख्य-फलम्—१

भौतिक—भूतविद्या जाननेवाला, तान्त्रिक
क्वचित्—कहीं पर
तडाग-कर्तुः—तालाब बनानेवाला
वारि-पूरितम्—जलपूर्ण
उत्पाट्यमानानि—खोदे जा रहे हुए
पुलिनानि—किनारों को
अन्येद्युः—दूसरे दिन
अन्यतः—दूसरी ओर
सोद्वेगम्—चिन्ता के साथ
स्वगतम्—अपने मन में
आरभ्य—आरम्भ कर, लेकर
पर्यालोच्य—विचार कर
एत्य—आकर
दिवः—आकाश से
विविच्य—विचार कर
उपेत्य—पास जाकर

मौर्ख्य-फलम्—२

पुच्छाग्रलग्नम्—पूंछ से चिमटे हुए
उत्क्षिप्य—उठाकर
स्वधाम—अपने स्थान को
मोदकानि—मिठाई
अवाप्य—पाकर
गतागतानि कुर्वन्तम्—जाते-आते हुए
अद्भुतम्—विचित्र
एष्यामि—आऊंगा

आश्लिष्य—गले लगाकर
सञ्जात-कौतुका:—विस्मित, आश्चर्ययुक्त
अह्नि—दिन
तडागोपान्तम्—तालाब के पास

मौर्ख्य-फलम्—३

पाणि-द्वयेन—दो हाथों से
लाङ्गूलम्—पूंछ को
धृत-चरणस्य—पांव पकड़े हुए के (धृतौ चरणौ येन, सः तस्य)
शृङ्खला—जंजीर
नभ:—आकाश को
उत्पतितवति—उड़ते हुए (सप्त० ए०)
किम्परिमाणानि—कितने (तौल में)
पद्मकोषाकारौ—कमल के समान आकार वाले
संश्लिष्टौ कृत्वा = जोड़कर
वक्ति—कहा
खात्—आकाश से
निधनम्—मृत्यु को

धर्मबुद्धि-कथा—१

धरातले—पृथ्वी पर
अन्यदा—कभी
प्रत्यागतौ—लौट आये
दहिष्यते—जल जायगा
विभज्येत—बांटा जायगा
निर्णीय—निर्णय कर
निज-निकेतनम्—अपने घर को
निशम्यताम्—सुनिये
ध्रुवम्—अवश्य
अश्रेयसे—हानि के लिए

धर्मबुद्धि-कथा—२

उत्पाट्य—उखाड़कर
काल-क्रमेण—कुछ समय में
अविद्यत—था
विज्ञापनम्—सूचना (रिपोर्ट)
आहूतेन—मंगवाये हुए ने
पण:—शर्त
सहस्रस्य पण: मुक्त:—हजार की शर्त लगाता हूं
शपथम्—सौगन्ध
दापयिष्यामि—दिलवाऊंगा

प्रतिपन्नम्—स्वीकार किया
प्रतिभुवौ—जामन
विदितार्थम् कृत्वा —समझा कर
धनलोभाभिभूतानाम्—धन के लोभ से आक्रान्त (युक्त)

धर्मबुद्धि-कथा—३

अग्रिमे—अगले, दूसरे
कौतुकी—कौतुक-युक्त, विस्मित
कृताञ्जलिः—हाथ जोड़े हुए
कोटर-स्थितेन–वृक्ष के खोल में बैठे
परिज्ञाय—जान कर
अग्नि-दग्ध-शरीरः—आग से जले शरीर वाला (अग्निनदग्धं शरीरं यस्य, सः—बहु०)
पुरतः—आगे
निग्रहम्—दंड
अश्नुते—भोगता है
आप्तवान्—पाया

मृग-काकयोः—१

अरण्यानी—बड़ा जंगल
हृष्ट-पुष्टाङ्गः–मोटे-ताजे अंगों वाला (हृष्टाः पुष्टाश्च अंगाः यस्य, सः–बहु०)
आसाद्य—पाकर
अनुचरेण—नौकर से
सवितरि–सूर्य (सवितृ-सप्त०एक०)
अस्मत्सख्यम्—हमारी मित्रता

मृग-काकयोः—२

आगन्तुना—आये हुए (अपरिचित) से
अज्ञात-कुल-शीलः—जिसके कुल और स्वभाव का पता न हो (अज्ञातं कुलं च शीलं च यस्य, सः)
विश्रम्भालापैः—विश्वास की बातों से
निभृतम्—एकान्त में
सस्यम्—घास
नियोजितः—लगाया
कालपाशात्—यम के बन्धन से
उत्कृत्यमानस्य—काटे हुए का
बाहुल्येन—अधिकता

मृग-काकयोः--३

उल्लसितः—प्रसन्न
छिन्धि—काटो
त्रायस्व—बचाओ (त्रै-लोट्-मध्य० पु०, एक०)
स्नायुनिर्मिताः--आंतड़ियों की बनी हुई
भट्टारकवारे—रविवार को
प्रदोष-काले—प्रभात काल में
इतस्ततः—इधर-उधर
अन्विष्य—ढूंढ कर
तथाविधम्—उस प्रकार के
अवधीरित-सुहृद्वाक्यस्य – मित्र की बात को न मानने का
वञ्चकः—धूर्त, ठग

मृग-काकयोः—४

सन्दर्श्य–दिखाकर (सम्+दृश्+णिच्+ल्यप्)
स्तब्धीकृत्य—निश्चल कर, अकड़ा कर
लिखामि – नोचता हूं
हर्षोत्फुल्ललोचनेन – प्रसन्नता से फूली हुई आंखों वाले ने (हर्षेण उत्फुल्ले लोचने यस्य, सः तेन, बहु०)
गुल्मान्तः-निभृतः—झाड़ी में छिपा हुआ
पक्षैः--आधा मास (दो पक्ष हैं—कृष्ण, शुक्ल)

मूर्खः कूर्मः—१

आकर्ण्य – सुन कर
आलापः – वचन
ह्रदम्—तालाब को
जलाशयान्तरे—दूसरे तालाब को (अन्यः जलाशयः)
विधिः—उपाय
वर्त्मना—मार्ग से
विधीयताम्—कीजिये
चञ्चु-धृतम्--चोंचों में पकड़े (चञ्चुभ्यां धृतम्)

मूर्खः कूर्मः – २

नीयमानम्—ले जाये जाते हुए
अज्ञः—मूर्ख

अनुष्ठिते—किये जाने पर
पक्त्वा—पका कर
दग्ध्वा—भून कर
परुष-वचनम्—कठोर बातें
विस्मृत-पूर्व-संस्कारः—पहिली बात को भूले हुए (विस्मृतः पूर्वः संस्कारः, येन सः बहु०)
व्यापादितः—मार दिया गया
हितकामानाम्—भलाई चाहने वालों की
अभिनन्दति—परवाह करता (नाभिनिन्दति = नहीं परवाह करता)
भ्रष्टः—गिरा हुआ

कृपण-कथा—१

अश्नाति—खाता है, भोगता है
अस्मरणीयत्वात्—स्मरण करने (नाम लेने) के योग्य न होने से
वर्तुलीकृत-वित्तः—जिसने धन सञ्चित किया है
प्रत्यासन्ने—पास आए हुए
परालक्ष्य-स्थाने—दूसरों से अज्ञात स्थान में
परामृश्य—विचार कर
कण्ठ-गत-प्राणैः—जिनके प्राण कण्ठ में हैं, जो मरने को हैं (कण्ठे गताः प्राणाः, येषां, ते, तैः—बहु०)
शुचः—शोक (शुच्–प्रथ० बहु०)

कृपण-कथा—२

प्राणमात्रावशेषः—केवल प्राण ही जिसमें शेष हैं, जो मरने ही वाला है।
परामृष्टवान्—विचार किया (परा+मृश्+तवत्)
निराकुलः—निश्चिन्त
विनियुङ्क्ते—लगाता, प्रयोग करता
कारुणिकाः—दयालु
अनुमन्यसे—स्वीकार करता है
दान-भोग-भवम्—दान और भोग से उत्पन्न
कामतः—यथेष्ट
विपन्ने—मर जाने पर
स्वकीय—अपना

कृपण-कथा—३

अभिधाय—कहकर
धन-पोटलिकाम्–धन की गांठ को
त्युक्तुकामेन—छोड़ना चाहते हुए
मज्जयित्वा—डुबाकर
वेतनत्वेन—पारिश्रमिक के रूप से
समीहितम्—इच्छा
दित्सया—देने की इच्छा से
जनयति—उत्पन्न करता है
प्रसूते—उत्पन्न करता है
परिहरति—हटाता है, दूर करता है
आविष्करोति—प्रकट करता है
सर्व-भोग-च्युतानाम्—सब भोगों से रहित
दुर्विपाकः—दुष्परिणाम, कुफल

कर्णास्त्र-वृत्तान्तः—१

शल्यसारथिः—शल्य सारथि सहित (शल्यः सारथिः यस्य, सः बहु०)
रथस्थः—रथ पर बैठा
कौतूहलम्—उत्कण्ठा
जामदग्न्यस्य—जमदग्नि के पुत्र (परशुराम) के
विद्युल्लता-कपिल-तुङ्ग-जटा-कलापम्—बिजली के समान पीत वर्ण और उन्नत जटा-जूट को धारण करने वाले
उद्यत्-प्रभा-वलयिनम्—निकलते हुए तेज का जिसके इरद-गिरद घेरा-सा बना हो, ऐसे
क्षत्रान्तकम्—क्षत्रियों का नाश करने वाले
भृगु-वंश केतुम्—भृगुकुल के अग्रणी
कृत्ते—काटे हुए
कृमिणा—कीड़े से
उरुद्वये—दोनों जंघाओं पर
निद्राच्छेद-भयात्—नींद खुल जाने के भय से
वेदना—पीड़ा
क्षतजाप्लुतः—लहू से भरा हुआ
रोपानलोद्दीपितः—क्रोध की आग से उत्तेजित (रोष एव अनलः, तेन उद्दीपितः)
काल-विफलानि—समय पर निष्फल
तत्रभवता—पूज्य (से)

कर्णास्त्र-वृत्तान्तः—२

निर्वीर्याणि—वीर्यरहित, निकम्मे
निमीलितेक्षणाः—आँखें बन्द किये हुए (निमीलितानि ईक्षणानि येषां, ते)
सप्तच्छद-दान-गन्धिनः—सप्तच्छद (एक प्रकार का वृक्ष) के समान जिनके मद का गंध है
निवर्तनम्—लौटना
सुपर्णेन—गरुड़ से
कम्बोज-कुलेषु—काबुल के (घोड़ों के) वंश में
अपराङ्मुखानाम्—अविमुख (युद्ध से न भागे हुए)
समर-मुखम्—युद्धभूमि
प्रथित-गुण-गणाढ्यम्—प्रसिद्ध गुणों से युक्त
बाढम्—अच्छा !

ईश-स्तवः—१

सचराचरम्—समग्र स्थावर और जंगम सृष्टि को
पासि—रक्षा करता है
प्रपंचम्—जगत् को
अखिलम्—सारे
स्थावर-जङ्गमम्—चल और अचल
अनुगृह्णासि—दया करता है
निदानम्—कारण
अखिल-लोक-सृष्टि-निपुणः—संसार को उत्पन्न करने में प्रवीण
अविता—रक्षा करने वाला (अवितृ, प्र० एक०)
महेशः—महादेव
बाधाहरः—विघ्न दूर करने वाला
आलपामि—बात करूं
कतमम्—किसे
वरदम्—वर देने वाले, इच्छा पूर्ण करन वाले
पादाम्बुजम्—चरण-कमल को (पादः अम्बुजः इव, तम्)

ईश-स्तवः—२

परस्तात्—परे, दूर
ईड्यम्—पूजनीय
सते—विद्यमान, सत्यस्वरूप (सत्-च० ए० व०)
चिते—चैतन्यरूप (चित्-चतु० एक०)
अद्वैत-रूपाय—एक रूप वाले
शाश्वताय—सदा स्थायी; अनश्वर
शरण्यम्—शरणागत की रक्षा में समर्थ
वरेण्यम्—उत्तम
निर्विकल्पम्—विकल्पहीन, निर्विकार
निधानम्—आश्रय, सहारा
भवाम्भोधि-पोतम्—संसार रूपी समुद्र को पार करने को जहाज

सज्जन-प्रशंसा

चित्राणि—विचित्र
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते—धन को तिनका (तुच्छ) मानते हैं
तद्भारेण नमन्त्यपि—उसके बोझ से झुकते हैं (नम्र रहते हैं)
अंजलिस्थानि—अंजलि (दो जुड़े हुए हाथ) में रखे हुए
वासयन्ति—सुगन्धित करते हैं
सुमनसाम्—सज्जनों की, पक्ष में—फूलों की
वाम-दक्षिणयोः—बायें-दायें
पयः—दूध
सद्यः—शीघ्र
क्षीरोदधेः—क्षीर समुद्र का
विकृतिः—विकार

विद्या-महत्त्वम्

पात्रताम्—योग्यता
प्रतिपत्तये—यश के लिए
आद्रियते—आदर (मान) की जाती है
गोचरम्—पास
कल्पान्ते—प्रलय के अन्त में
भारति—हे सरस्वति !
व्ययतः—खरचने से

वसुमती पतिना —पृथ्वीपति (राजा) से

सम-विभाग-हरैः—बराबर के हिस्सादारों से

मूषिक-चातुर्यम्—१

विनोद—मनोरंजन
आख्यामि—कहता हूं
न्यग्रोधः—बड़
पृथगालयाः—अलग-अलग घर वाले
अनन्यलभ्ये—दूसरों से अप्राप्य (जहां कोई दूसरा नहीं पहुंच सकता)
वध्यः—मारा जाने वाला

परिबभ्रमुः—घूमते थे
लिप्सया—पाने की इच्छा से
पद-श्रेणीम्—पांवो के चिह्नों को
अभितः—चारों ओर
जिघांसया—मारने की इच्छा से
निभृतागतः—गुप्त रूप से आया
जहर्ष—प्रसन्न हुआ
वर्त्मना—मार्ग से
विग्नः—भयभीत

मूषिक-चातुर्यम्—२

मार्जार-दूरगम्—बिल्ले से दूर गये हुए
शत्रु-सङ्कट-गतः—शत्रुओं की विपत्ति में पड़ा हुआ, शत्रुओं से घिरा हुआ
पाशच्छेदोपयोगिनम्—जाल को काटने को उपयोगी
ऋजूनाम्—सरल प्रकृति वाले मनुष्यों का
उत्सङ्गम्—गोद
पाश-पीड़ितः—जाल में फंसा हुआ

द्रुतम्—शीघ्र
कटकटायद्भिः—कट-कट शब्द करते हुए
दशनैः—दांतों से
अर्थयमाने—प्रार्थना करते हुए
द्राक्—शीघ्र
पलाय्य—भागकर
आहूतः—बुलाया हुआ
जगाद—बोला
कालयुक्त्या—समय के योग से, अवसर के आने पर

रामस्य सीतोपदेशः

तत्रभवान्—पूज्य
प्रव्राजयति—भेजता है
वस्तव्यम्—रहना चाहिए
कत्थ्यः—प्रशंसा किया जाना चाहिए
प्रसाद्यः—प्रसन्न करने के योग्य
स्थिरा—धैर्यवती
व्रतोपवास-परया—व्रत और उपवास (निराहार व्रत) करती हुई
अनघे—निष्पाप
कल्यम्—प्रातः
सन्तापकर्षिता—दुःख से आक्रान्त
त्वत्तः—तुझ से
आराधिताः—सेवित
विपर्यये—प्रतिकूलता में
औरसान्—अपने, सगे
समनुवर्तिनि—अनुसार चलने वाली

सीतायाः प्रत्युत्तरं रामम्प्रति

स्वसा—बहिन
भुञ्जानाः—भोगते हुए
आदिष्टा—आज्ञा दी गई
प्रेत्य—मर कर
मृद्नन्ती—कुचलती हुई
कुश-कण्टकान्—दर्भ के कांटों को
दुर्गम्—कठिन
शुश्रूषमाणा—सेवा करती हुई
रंस्ये—प्रसन्न रहूंगी, विनोद करूंगी
पल्वलानि—छोटा तालाब
हंस-कारण्डवाकीर्णाः—हंसों और बत्तखों से भरी हुई
पद्मिनीः—नदियों को
रोचये—चाहती

श्रीकृष्णस्यार्जुनोपदेशः

क्लैब्यम्—नपुंसकता, भीरुता
मास्म गमः—मत कर
उपपद्यते—उचित है
कृत्स्नम्—समग्र
अभिभवति—आक्रान्त करता है
भविता—होगा (भू-लुट्, प्रथ० ए०)

भूयः—फिर
अजः—अजन्मा
शाश्वतः—सदा स्थायी
वासांसि—वस्त्रों को
विहाय—छोड़ कर
जीर्णानि—फटे-पुराने
क्लेदयन्ति—भिगोते हैं
अपरिहार्ये—अवश्यंभावी
अकर्मणि—कर्म-हीनता में, निकम्मा रहने में
पुमान्—पुरुष
निःस्पृहः—इच्छा-रहित
निर्ममः—ममता से रहित
इतरः—दूसरा
श्वपाके—चांडाल में
विद्धि—जानो

विदुर-नीतिः

अनाहूतः—न बुलाया हुआ
नराधमः—नीच नर
क्षिपति—निन्दा करता
अनीशानः—असमर्थ
कदर्यम्—कृपण
भजते—सेवा करता है, साथ रहता है
इषुः—बाण
धनुष्मता—धनुर्धर से
उत्सृष्टा—छोड़ी हुई, प्रयुक्त की हुई
अतृणे—जहां घास न हो
अनर्चयन्—न पूजता हुआ, आदर न करता हुआ
परिचर्याः—सेवित होने चाहिएं
जह्यात्—छोड़ दे
अर्णवे—समुद्र में
अनधीयानम्—न पढ़ते हुए, मूर्ख
ऋत्विजम्—होता को

विविधानि नीति-पद्यानि

लालयेत्—लाड-प्यार से पाले
परदारेषु—परस्त्रियों को
लोष्ठवत्—मिट्टी के ढेले की तरह
अमेध्यात्—मलिन, दूषित
दुष्कुलात्—नीच कुल से
विभव-क्षये—धन नष्ट होने पर
करस्थेन—हाथ में पकड़े हुए के द्वारा
व्यसायिनाम्—उद्यमियों को
निवार्यते—दूर किया जाता है

सुभाषितानि

वैनतेय:—गरुड
अङ्कम्—गोद में
पौरुषम्—शूरता
वसुधा—पृथ्वी
वय—आयु
दर्दुराः—मेंढक
क्षतिः—हानि

आडम्बर:—तड़क-भड़क
पर-सदन-निविष्ट:—दूसरे के घर रहता हुआ
वपति—बोता है
ऊहति—बूझ लेता है
निरस्तपादपे—वृक्षहीन
द्रुमायते—वृक्ष ही होता है